



॥ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

“सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा”

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म
वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वतारमवतु।
अवतु माम्। अवतु वक्तारम्॥

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव
जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में
सदा सत्य का आचरण करें।



युग प्रवर्तक महर्षि
दयानन्द सरस्वती
(1824-1883)



रामप्रसाद बिस्नोय 'क्रांतिकारी'
(जन्मदिन - 11 जून)



पं. रामप्रसाद दसा
(देहांत : 15 जून)

संगठनसूक्त

ओं संसमिद्युवसे वृषन्नग्रे विश्वान्यर्य आ ।
इळसपदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥
हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को ।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन-वृष्टि को ॥

ॐॐॐॐॐॐ

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनासि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ॥
प्रेस से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो ।
पूर्वजों की भाति तुम कर्तव्य के मानी बनो ॥

ॐॐॐॐॐॐ

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
हों विचार समान सबके चित्त-मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब श्रेष्ठ हों ॥

ॐॐॐॐॐॐ

समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बड़े सुख-सम्पदा ॥



॥ कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक

श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्री रविन्द्र सेठ 'प्रधान'

प्रबंध संपादक

महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

प्रधान संपादक

आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक

ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं प्रधान संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्रा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMU-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति : 20/-

वार्षिक : 250/-

पांच वर्ष : 1100/-

आजीवन : 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय	2
2.	परमपिता परमात्मा पूर्णतया...	3
3.	स्वामी दयानंद के वेद विषयक...	4-5
4.	इंद्रिय-संयमः	6-7
5.	यज्ञ का वैज्ञानिक स्वरूप	8-9
6.	वैदिक चिंतन : सोम की प्रजाएं	10
7.	ब्राह्मण के कर्तव्य, कर्म और गुण	11
8.	आर्य समाज का चौथा नियम	12-13
9.	शहीद रामप्रसाद बिस्मिल...	16-17
10.	महर्षि दयानंद : अंतर्दामी शिक्षा...	18
11.	महर्षि दयानंद : क्रांतिकारी विचारों...	20
12.	समाचार दर्पण	22

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। अपना चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69,
सेक्टर-33, नोएडा- 201301
गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731
9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

जून : 2017, विश्ववारा संस्कृति, 1

॥ ओ३म् ॥

सच्चे अर्थों में आर्य बने

निरुक्तकार महर्षि यास्क ने आर्य शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है 'आर्य ईश्वर पुत्र' अर्थात् आर्य ईश्वर का पुत्र होता है। सामान्यतया समस्त सृष्टिकर्ता परम पिता परमात्मा है और हम सब उसकी संतान हैं। आर्य ईश्वर पुत्र होता है, इसके पीछे के कथन का उद्देश्य है कि ईश्वर का सच्चा पुत्र वही होता है जो उसकी आज्ञा का पालन करता है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मंत्रों की व्याख्या में लिखा है कि आत्मा और अंतःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में सदैव तत्पर रहना। परमात्मा की आज्ञा पालन करना ही उसकी भक्ति और आर्यत्व है। परमात्मा का आदेश, उपदेश, संदेश तथा आज्ञा हमें वेदों के रूप में प्राप्त है। इसलिए महर्षि ने आर्य समाज के दस नियमों में निर्देश देते हुए लिखा 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'

वेदों का नियमित स्वाध्याय करें, वेद ज्ञान को प्राप्त करके उस पर चलने का प्रयास करें। वेद का मार्ग सत्य का, न्याय का, धर्म का, प्रेम, सौहार्द, सहिष्णुता, उदारता, मैत्री, सहयोग, संगठन का मार्ग है। किंतु आर्य समाज में आज इन गुणों का अभाव दिखाई पड़ता है। संगठन की दृष्टि से आर्यसमाज विखरता हुआ दृष्टिगत होता है।

ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध का भाव बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है। प्रीति, प्रेम का स्थान परनिंदा चुगली लेती जा रही है। एक सभा के कई-कई प्रधान एक ही संस्था के कई अधिकारी दिखाई पड़ते हैं। इन समस्याओं का समाधान हमारे पास है- एक व्यक्ति के रूप में हम सच्चे आर्य बने व्यक्ति से श्रेष्ठ परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व का निर्माण होता है। वेद की आज्ञा का पालन करते हुए सद्गुणों को धारण कर सच्चे आर्य बने तथा संगठित रहें।

■ आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार



आर्य ईश्वर पुत्र होता है, इसके पीछे के कथन का उद्देश्य है कि ईश्वर का सच्चा पुत्र वही होता है जो उसकी आज्ञा का पालन करता है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मंत्रों की व्याख्या में लिखा है कि आत्मा और अंतःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में सदैव तत्पर रहना। परमात्मा की आज्ञा पालन करना ही उसकी भक्ति और आर्यत्व है। परमात्मा का आदेश, उपदेश, संदेश तथा आज्ञा हमें वेदों के रूप में प्राप्त है। इसलिए महर्षि ने आर्य समाज के दस नियमों में निर्देश देते हुए लिखा 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेदों का नियमित स्वाध्याय करें, वेद ज्ञान को प्राप्त करके उस पर चलने का प्रयास करें। वेद का मार्ग सत्य का, न्याय का, धर्म का, प्रेम, सौहार्द, सहिष्णुता, उदारता, मैत्री, सहयोग, संगठन का मार्ग है।

‘लालच वह अवगुण होता है, जो प्रत्येक दिन बढ़ता ही जाता है।

जब तक इंसान का पतन नहीं हो जाता है।’ - स्वामी दयानन्द सरस्वती

परमपिता परमात्मा पूर्णतः अमृत है, परमात्मा का आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है

वेद के अनुसार-

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्यु...। यजु.। 25/13।

जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, और जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है। वह है ईश्वर। ईश्वर ही शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा है। जीवन अमृत है, ईश्वर की छाया में निरन्तर रहना और मृत्यु नाम है उन दुःखों का जो हमारे जीवन में ईश्वर की आज्ञा का पालन न करके अर्थात् ईश्वर की आज्ञाओं की अवहेलना कर उठाते हैं। मृत्यु से बचने का उपाय है, ईश्वर की छाया में रहना। इसके लिए आवश्यक है कि हम ईश्वर से प्रीति बढ़ावें और उसकी आज्ञा का पालन करें। जिससे हम प्रीति बढ़ाना चाहते हैं, उसे जानें, मिलें, वार्तालाप करें और उसी की भावनाओं का आदर करते हुये आज्ञा का पालन करें।

यदि हम किसी से मिलते ही शिकायतें करना शुरू कर देंगे कि आप तो अपनी मर्जी चलाते हैं और दूसरों की भूलों, गलतियों के लिये उसे ही जिम्मेदार ठहराएंगे, जिसलिए उसका दोष नहीं तो क्या हम उससे प्रीति बढ़ा सकते हैं? इससे दूरियां बढ़ेंगी और वह हमसे मिलना ही नहीं चाहेगा। यही बातें ईश्वर के सम्बन्ध में लागू होती हैं।

ईश्वर चेतन है, वह देखता भी है, सुनता भी है, वह बोलता भी है धीरे से हमारे अन्तःकरण में। हमारी आत्मा से ईश्वर की आवाज को अपने अन्तःकरण में चित्त की वृत्तियों को समाहित कर सुनना ही ध्यान है।

हमारा शरीर ही मन्दिर है, इस शरीर में जहां हृदयाकाश में आत्मा वास करता है वही स्थान आत्मा और परमात्मा का मिलन स्थल है। ईश्वर न ईंट, पत्थरों से बनाये मन्दिरों में मिलता है, न मस्जिद में, न घंटों, घड़ियालों की ध्वनि सुनकर आता है और न आता है अज्ञान सुनकर। मूर्तियां न देख सकती हैं, न बोल सकती हैं, न सुन सकती हैं। ऐसी मूर्तियों को ईश्वर मानकर पूजना जहां अपने आप को धोखा देना है, वहां वास्तविक ईश्वर की उपेक्षा कर उसकी छाया से वंचित रहना है। ईश्वर तो इसी शरीर में प्रविष्ट है जो उसी ने

बनाया है। जहां आत्मा वहां परमात्मा, जहां पर ये दोनों, उस स्थान को चाहे मन्दिर कह लो, चाहे मस्जिद, चाहे कुछ और।

हमें यदि मृत्यु आदि दुःखों से तरना है और अमृत में रहना है तो अपने हृदय मन्दिर में ईश्वर से स्तुति द्वारा वार्तालाप शुरू करना है। प्रार्थना द्वारा अपनी चाहत, अपनी इच्छा ईश्वर को बतानी है और फिर ईश्वर की आज्ञा उसके समीप होकर अपने अन्तःकरण में ध्यान से सुननी है। इस प्रक्रिया को ही उपासना योग कहते हैं। योग है आत्मा का ईश्वर से युक्त होना और भक्ति है ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना।

योग और भक्ति का फल ही अमृत है अर्थात् ईश्वर की छाया में रहना। जब तक हम अमृत में रहेंगे मृत्यु दूर रहेगी और जहां हम अमृत अर्थात् ईश्वर की छाया से दूर हुये नहीं कि मृत्यु देर नहीं करेगी दबोचने में यदि हमारा समय पूरा हो चुका है तो। अतः अब हम-आप पर है कि अमृत में रहना चाहते हैं या मृत्यु आदि के दुःखों के भंवर में। ईश्वर पूर्णतया अमृत है। वह मृत्यु से ऊपर है। अतः उसे जानकर मृत्यु को जीता जा सकता है और मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य जब पूर्णतया अपने आप को उस परमेश्वर को अर्पण कर देता है। प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा हो जाती है। प्रभु का कार्य ही उसके लिये प्रभु कृपा हो जाती है। वह न केवल भय और दुःखों पर विजय प्राप्त कर लेता है। वरन प्रभु से प्राप्त सम्पदाओं सहित उस अलौकिक आनन्द को भी सेवन करता है। जिस-को मोक्षानन्द कहते हैं।

मन को शुभ संकल्पों में प्रेरित करने वाला, बुद्धि को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाला, बल का देने वाला वही एक प्रकाशमान सविता देव है। हमें सदैव इस सत्य की अनुभूति होनी चाहिए कि ईश्वर हमारे आगे पीछे, ऊपर नीचे, सर्वत्र है। वह हमारा सखा व मित्र है। वही परम हितैषी है। वह हमारा सदैव भला चाहता है। वही हमारी प्रेरणा का स्रोत है। वही सब कुछ है। परमेश्वर के सान्निध्य में परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। अतः उस ओर प्रयास करना चाहिए।



प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

हमारा शरीर ही मन्दिर है, इस शरीर में जहां हृदयाकाश में आत्मसात करता है वही स्थान आत्मा और परमात्मा का मिलन स्थल है। ईश्वर न ईंट, पत्थरों से बनाये मंदिरों में मिलता है, न मस्जिद में, न घंटों, घड़ियालों की ध्वनि सुनकर आता है और न आता है अज्ञान सुनकर। मूर्तियां न देख सकती हैं, न बोल सकती हैं, न सुन सकती हैं। ऐसी मूर्तियों को ईश्वर मानकर पूजना जहां अपने आप को धोखा देना है, वहां वास्तविक ईश्वर की उपेक्षा कर उसकी छाया से वंचित रहना है। ईश्वर तो इसी शरीर में प्रविष्ट है जो उसी ने बनाया है। जहां आत्मा वहां परमात्मा जहां पर ये दोनों, उस स्थान को चाहे मंदिर कह लो चाहे मस्जिद, चाहे कुछ और। हमें यदि मृत्यु आदि दुःखों से तरना है और अमृत में रहना है तो अपने हृदय मंदिर में ईश्वर से स्तुति द्वारा वार्तालाप शुरू करना है। प्रार्थना द्वारा अपनी चाहत, अपनी इच्छा ईश्वर को बतानी है और फिर ईश्वर की आज्ञा उसके समीप होकर अपने अन्तःकरण में ध्यान से सुननी है। इस प्रक्रिया को ही उपासना योग कहते हैं। योग है आत्मा का ईश्वर से युक्त होना और भक्ति है ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना। योग और भक्ति का फल ही अमृत है अर्थात् ईश्वर की छाया में रहना।

स्वामी दयानन्द के वेद विषयक विचार

अ

ज्ञान के अंधकार से ग्रस्त, अंधविश्वास में आसक्त, जाति, धर्म एवं वर्गभेद से त्रस्त मानव जाति को समस्त प्रकार के भेदभावों से मुक्ति प्रदान करवाने वाले तथा नारी जाति के महान उद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द एक ऐसे क्रांतिकारी तथा समाज सुधारक थे, जिन्होंने प्रेम, सद्भाव एवं स्नेह के मंत्र द्वारा भेदभाव को समाप्त किया। उन्होंने युक्ति, तर्क एवं विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरने वाले पथ को प्रशस्त किया। स्व ज्ञान के अप्रतिम प्रकाश से समाज में व्याप्त अंध विश्वास तथा रूढ़ियों के अंधकार को विनष्ट किया। वह युग प्रवर्तक थे, योगी थे तथा दया एवं आनंद के असीम सागर थे। वह मानवता के उद्धारक, दीनों के त्राता तथा सत्य के अनुपम उपासक थे। वेदों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। आर्य समाज के तृतीय नियम में उन्होंने वेद को न केवल समस्त विद्याओं का पुस्तक माना, अपितु वेद का पढ़ना-पढ़ाना तथा सुनना-सुनाना समस्त आर्यों का परम धर्म माना।

महर्षि की सम्पत्ति में 1. विज्ञान 2. कर्म 3. उपासना तथा 4. ज्ञान काण्ड वेद के चार विषय हैं। उन्होंने विज्ञान विषय को चारों विषयों में प्रमुख माना। उन्होंने स्पष्ट किया कि परमेश्वर से आरम्भ करके तृण पर्यंत पदार्थों का साक्षात् बोध होने के कारण विज्ञान विषय सर्वप्रधान है। इसके अंतर्गत भी ईश्वर का अनुभव मुख्य है। समस्त वेदों का तात्पर्य स्पष्ट करना तथा ईश्वर के समस्त पदार्थों में परमात्मा का प्रतिपादन करवाना ही उनका प्रमुख लक्ष्य था।

वेदों में परा तथा अपरा नाम की दो विद्याएं विद्यमान हैं इनमें भी जिसके द्वारा पृथ्वी तथा तृण से लेकर प्रकृति पर्यंत पदार्थों के ज्ञान द्वारा उपकार ग्रहण किया जाता है, वह अपरा विद्या कहलाती है तथा जिसके द्वारा अदृश्य इत्यादि विशेष गुण सम्पन्न सर्वशक्तिशाली ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह परा विद्या मानी जाती है। अपरा विद्या की उत्तम फल प्राप्ति ही परा विद्या है। यह विद्या अर्थशक्ति के कारण अपरा विद्या से उत्कृष्ट है।

द्वितीय कर्मकांड नाम का विषय क्रिया प्रधान है। इसके बिना अभ्यास के ज्ञान भी पूर्णतत्त्व को प्राप्त नहीं करता है, क्योंकि मन का योग क्रिया तथा आभ्यन्तर के योग में सदैव विद्यमान रहता है। वह वैसे तो अनेक प्रकार का है, किंतु उसके

डॉ. मंजु नारंग, डी.लिट.

भी परमार्थ तथा लोक व्यवहार दो प्रमुख भेद हैं। परमार्थ के अंतर्गत ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, आज्ञा पालन तथा धर्मानुष्ठान के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का ही प्रयास किया जाता है तथा लोक व्यवहार से धर्म, अर्थ, काम तथा उनकी सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है। परमार्थ भेद के अंतर्गत परमेश्वर की प्राप्ति को ही लक्ष्य मानकर कार्य किया जाता है तथा इसमें श्रेष्ठ फल की प्राप्ति को ही निष्काम मार्ग माना जाता है। सकाम कर्म के अंतर्गत अर्थ, काम तथा फल की प्राप्ति हेतु धर्मयुक्त कर्म किये जाते हैं इसका फल नश्वर होता है, क्योंकि समस्त कर्मों को करके इन्द्रिय भोगों को प्राप्त होने के कारण जन्म मरण से मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती है।

अग्नि होत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत यज्ञों में सुगंधित, मिष्ट गुण सम्पन्न, पुष्टिकारक तथा रोग विनाशक इन चारों गुण कारक तत्वों का परस्पर शोधन तथा संस्करण करके इस शोधित द्रव्य से वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि करने के लिए अग्नि में जो होम किया जाता है, वह अखिल विश्व के लिए सुखकारक होता है तथा इसको भोजन, छादन, यान, कला कौशल, यंत्र तथा सामाजिक नियम के प्रयोजन हेतु किया जाता है। यह अधिकांशतः कर्ज के सुख के उद्देश्य से ही किया जाता है। होम से वायु जल तथा औषधि इत्यादि के शुद्ध होने से सम्पूर्ण जगत् को सुख तथा अशुद्धि से दुख प्राप्त होता है। अतएव इनकी शुद्धि आवश्यक होती है।

तृतीय उपासना के अंतर्गत वेदों को परमात्मा का ही उपासनीय माना गया है। अद्वितीय परमात्मा के प्रकाश, धारण तथा उपासना करने से समस्त व्यवहार के देव प्रकाशित होते हैं। इनका जन्म तथा कर्म ईश्वर की सामर्थ्य से होता है। इनके रमण का स्थान, शीघ्र सुख प्राप्ति का कारण तथा समस्त प्रकार के शत्रुओं का विनाशक हेतु एक मात्र परमात्मा है। अतएव परमात्मा ही सभी का उत्पादक, धारक तथा मुक्ति प्रदाता होने के कारण उपासनीय है।

इस संदर्भ में ब्राह्मण ग्रंथों में वेद मंत्रों की व्याख्या में व्यवहार के लिए तैत्तिरीय देवों का उल्लेख किया गया है। ये तैत्तिरीय देव हैं- अष्ट

वेदों में परा तथा अपरा नाम की दो विद्याएं विद्यमान हैं इनमें भी जिसके द्वारा पृथ्वी तथा तृण से लेकर प्रकृति पर्यंत के पदार्थों के ज्ञान के द्वारा उपकार ग्रहण किया जाता है, वह अपरा विद्या कहलाती है तथा जिसके द्वारा अदृश्य इत्यादि विशेष गुण सम्पन्न सर्वशक्तिशाली ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह पराविद्या जानी जाती है। अपरा विद्या की उत्तम फल प्राप्ति ही परा विद्या है। यह विद्या अर्थशक्ति के कारण अपरा विद्या से उत्कृष्ट है। द्वितीय कर्मकांड नाम का विषय क्रिया प्रधान है। इसके बिना अभ्यास का ज्ञान भी पूर्णतत्त्व को प्राप्त नहीं करता है, क्योंकि मन का योग क्रिया तथा आभ्यन्तर के योग में सदैव विद्यमान रहता है। वह वैसे तो अनेक प्रकार का है, किंतु उसके भी परमार्थ तथालोक व्यवहार दो प्रमुख भेद हैं। परमार्थ के अंतर्गत ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, आज्ञा पालन तथा धर्मानुष्ठान के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति का ही प्रयास किया जाता है तथा लोक व्यवहार से धर्म, अर्थ, काम तथा उनकी सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है। परमार्थ भेद के अंतर्गत परमेश्वर की प्राप्ति को ही लक्ष्य मानकर कार्य किया जाता है तथा इसमें श्रेष्ठ फल की प्राप्ति को ही निष्काम मार्ग माना जाता है। सकाम कर्म के अंतर्गत अर्थ, काम तथा फल की प्राप्ति हेतु धर्मयुक्त कर्म किये जाते हैं इसका फल नश्वर होता है, क्योंकि समस्त कर्मों को करके इन्द्रिय भोगों को प्राप्त होने के कारण जन्म मरण से मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती है। अग्नि होत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत यज्ञों में सुगंधित, मिष्ट गुण सम्पन्न, पुष्टिकारक तथा रोग विनाशक इन चारों गुण कारक तत्वों का परस्पर शोधन तथा संस्करण करके इस शोधित द्रव्य से वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि करने के लिए अग्नि में जो होम किया जाता है।

वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, एक इंद्र तथा एक प्रजापति। इनमें से अष्ट वसु हैं- 1. अग्नि 2. पृथ्वी 3. वायु 4. अंतरिक्ष 5. आदित्य 6. द्यौ 7. चन्द्रमा तथा 8. नक्षत्र। समस्त पदार्थों के इनमें निवास करने के कारण तथा सभी के निवास स्थान होने के कारण इनको वसु कहा जाता है। शरीर में दस प्राण विद्यमान हैं- प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय तथा एकादश जीवात्मा है। इनके शरीर से बहिर्गमन करने पर प्राप्त विलाप करते हैं। प्राण त्याग के समय निकलते हुए रुलाने के कारण इनको रुद्र कहा जाता है। इसी प्रकार द्वादश मास आदित्य को कहते हैं। जगत के समस्त पदार्थों का आदान अर्थात् सभी की आयु को ग्रहण करने के कारण इनको आदित्य कहा जाता है।

ये समस्त वसु इत्यादि परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं तथा परमात्मा तो स्व प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, अतएव वह सभी का आराध्य देव है। परमात्मा सर्व शक्तिशाली तथा सर्वगुण सम्पन्न है। उसी में सम्यक् रूपेण देवत्व की अनुभूति होती है। देव विषय के भी मूर्तिमान तथा अमूर्तिमान दो भेद हैं। माता-पिता, आचार्य तथा अतिथि में चार मूर्तिमान देव हैं। पञ्चम ब्रह्मदेव अमूर्तिमान देव हैं।

इसी प्रकार से अष्ट वसुओं में से अग्नि, पृथ्वी, आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये पांच वसु मूर्तिमान देव हैं। एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, मन, षड् ज्ञानेन्द्रियों, वायु, अंतरिक्ष, द्यौ तथा विद्युत एवं विधि यज्ञ में समस्त सशरीरी तथा अशरीरी हेतु भी माने जाते हैं। इस प्रकार से

मूर्तिमान तथा अमूर्तिमान भेद से देव दो प्रकार के होते हैं। इनमें भी व्यवहार की उपयोगिता के कारण देवत्व ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार से माता-पिता, आचार्य तथा अतिथि की व्यवहार में उपयोगिता तथा परमार्थ का प्रकाशत्व करना मात्र ही देवत्व है। परमात्मा तो निश्चित रूप से ईष्ट की उपयोगिता के कारण ही उपास्य है। वेदों में इस प्रकार का अन्य कोई देव नहीं है। अतएव समस्त मनुष्यों के लिए एक मात्र परमात्मा ही उपासनीय है। यह तथ्य निश्चितरूप से ध्यातव्य है। जगत के कारण प्रकृति में प्राण को प्राचीन तथा उसके कार्य के प्राण को नवीन कहा जाता है। अतएव समस्त विद्वानों को उन्हीं ऋषियों के साथ योगाभ्यास से अभिकारक परमात्मा की ही स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करनी चाहिए।

चतुर्थ ज्ञान कांड के अंतर्गत केवल परमात्मा ही कर्म, उपासना तथा ज्ञान कांड में सभी का इष्टदेव तथा स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना के योग्य माना गया है। इसमें उसके सकाम भाग में ही उसकी प्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। इसके अंतर्गत इष्ट विषय के भोग की प्राप्ति हेतु परमात्मा का परित्याग नहीं किया जाता है। कार्य, कारण संबंध के कारण परमात्मा ही सर्वत्र स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना के कारण पूजनीय है।

वेदों का नाम छन्द स्वतंत्र प्रमाण तथा सत्य विद्याओं से परिपूर्णता के कारण रखा गया है। सत्य विद्याओं का ज्ञान होने के कारण इनको मंत्र नाम भी प्राप्त है। वेदों के अध्ययन, अभ्यास तथा श्रवण से समस्त विद्याओं का मनुष्यों को ज्ञान होने के कारण इनको 'श्रुति' भी कहा जाता है। समस्त

पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होने के कारण इनको 'निगम' भी कहा जाता है। इन चारों शब्दों को एकार्थवाची अर्थात् पर्याय स्वरूप ही जानना चाहिए।

अतएव महर्षि का वेद विषयक ज्ञान व्यापक, सुस्पष्ट तथा गहन है। उनके द्वारा वर्णित वेद विषयक विवरण सरल, सुबोध तथा सुगम्य है। महर्षि ने विवेच्य विषयों की सुस्पष्टता तथा पुष्टि हेतु यथा स्थान तथा आवश्यकतानुसार प्रमाणों को भी प्रस्तुत किया है। अतएव वेद का अध्ययन मनन तथा चिंतन हम सभी के लिए आवश्यक तथा उपयोगी है। वेदों के विषय में महर्षि के द्वारा प्रशस्त मार्ग हम सभी के लिए अनुकरणीय है। वेदानुयायी बनने पर हम अपने जीवन को समुन्नत तथा आदर्श पथ के पथिक बन सकते हैं। हम आर्यों के लिए यही अनुपालनीय तथा परमधर्म है।

संदर्भ विवरण :

1. अत्रचत्वारो - प्रधानत्वात्। दयानंद ग्रंथ माला- वेद विषयक विचार पृष्ठ सं. 283,
2. वेदेषु द्वे विषये वर्ति- वेद्यम्। वही पृष्ठ 284,
3. तत्र द्वितीयो- स्व सुखायैव भवति। वही पृष्ठ 287-288,
4. इति सर्वमनुष्योपास्यः - ब्रह्मस्ति। वही पृष्ठ 313-314,
5. तथैव पूर्वोक्तासु - निश्चीयताम्। वही पृष्ठ 314,
6. पूर्वोभिः पूर्वकालावस्थास्यैः - मंत्रव्यम। वही पृष्ठ 322,
7. तद्वदन्यत्रापि- वेदाभिप्रायोऽस्ति। वही पृष्ठ 307,
8. श्रुतिवेदो मंत्राश्च- मंत्रश्चेति। वही पृष्ठ 323।

००

मित्र-भावना

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मज्ञेवानुपश्यति

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥ यजु. 40.6

आत्मवत् : सब जीवधारी प्राणियों को आत्मवत् देखो। सब में ही आत्मा का निवास है। सब एक ही विश्वात्मा के अंश हैं। जो प्रेम-व्यवहार तुम अपने से करते हो, वही दूसरों से करो। जो मनुष्य सबको आत्मवत् मानते हुए सबसे प्रेम करता है, वह कभी भी निष्करण नहीं होगा। क्षमा, दया, करुणा आदि दैवीय गुण उसमें स्वयं आ जाएंगे, और अपने ईश्वरीय गुणों के कारण उसे आनंद स्वराज्य ईश्वर का साभिध्य मिलेगा।

दृते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा,

सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजु. 24.18

मित्र-दृष्टि : हे सर्वसमर्थ प्रभु! मुझे भी सामर्थ्यवान् मुझे सब प्राणी मित्र-दृष्टि से देखें। मैं भी मन में सबके लिए मित्र-भाव रखूँ। सबका हित-चिंतन ही मेरा स्वभाव रहे। हम सब परस्पर सहानुभूति, सौहार्द से रहें।

न स सखा यो न ददाति सख्ये,

सचामुवे अचमानाय पितृः।

अपास्मात् प्रेयास तदोको अस्ति,

पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्॥ ऋक. 10.117.4

मित्र-लक्षण : वह मित्र कहलाने योग्य नहीं, जो सम्पन्न होकर भी अपने मित्र की सहायता नहीं करता। वह घर घर नहीं, जहाँ मित्र को आश्रय नहीं मिलता। ऐसे स्वार्थी व्यक्ति का कोई मित्र नहीं बनता। ऐसे व्यक्ति के समीप जाने की अपेक्षा मृत्यु स्वीकार करना अधिक श्रेयस्कर है।

००

इन्द्रिय-संयमः

- स्वामी वेदान्त जी

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ २।८८॥

संयम से दूर करने वाली, विषयों में विचरने वाली इंद्रियों के संयम में ज्ञानी इस भांति यत्न करे जिस भांति सारथि घोड़ों को नियंत्रण में करता है।

कठोपनिषत् के- 'इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्' ज्ञानी इंद्रियों को घोड़े कहते हैं और विषयों को उनका घास- वचन के साथ मिलाकर इसे पढ़िए। आत्मसाक्षात्कारी ऋषि एकमत हैं, दो और दो को सभी चार मानते और कहते हैं, अर्थात् जो सत्य है, वह सभी देशों और कालों में सत्य है। विषयों पर विजय पाये बिना सांसारिक कार्यों में सफलता नहीं मिला करती, पारमार्थिक कार्यों में तो उनका जीतना अविर्य है ही, अतः मनु महाराज का ऐन्द्रियक विषयों के संयम के लिए आदेश करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रसंग से इंद्रियों का वर्ण करते हैं-

एकादशेन्द्रियाण्याहुयानि पूर्वं मनीषिणः।

तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ २।८९॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी।

पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥ २।९०॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चेषां श्रोत्रादन्यनुपूर्वशः।

कर्मैन्द्रियाणि पञ्चेषां पाटवादीनि प्रचक्षते ॥ २।९१॥

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।

यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ २।९२॥

पूर्व विद्वान् ग्यारह इंद्रियां बताते हैं, क्रम से उनका यथावत् ठीक-ठीक वर्ण करता हूँ। श्रोत (कर्ण), त्वक् (स्पर्श), नेत्र, जिह्वा (रसना) और पांचवीं नासिका (घ्राण) है। पायु (मल त्यागने का करण), उपस्थ (मूत्र त्यागने का करण), हस्त (हाथ), पाद (पांव) और वाणी दशवीं कही जाती है। इनमें से श्रोत्र आदि क्रमपूर्वक पांच को बुद्धि इंद्रिय= ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं और पायु आदि पांच को कर्मैन्द्रिय करते हैं। मन को ग्यारहवीं इंद्रिय जानना चाहिए। वह अपने गुण के कारण उभयात्मक ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मैन्द्रिय दोनों है। जिसके जीत लेने पर दोनों पञ्चक (पांच-पांच समुदाय) जीत लिए जाते हैं। (वेद में आत्मा को अनेक स्थलों में इन्द्र कहा गया है। इंद्रिय के अर्थ हैं- 'इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रद्रष्टृ मिन्द्रसृष्टमिन्द्र जुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा'- पा. ५।२।९३

इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रद्रष्टृ, इन्द्रसृष्ट, इन्द्रजुष्ट अथवा इन्द्रदत्त। हमें यहां पहले इन्द्रलिङ्ग अर्थ से प्रयोजन है, अर्थात् इन्द्र की सत्ता का जो ज्ञान कराये, उसे इंद्रिय कहते हैं। नेत्र आदि करण हैं। करण का प्रयोग करने वाला कर्त्ता उससे सदा पृथक् हुआ करता है। करणकर्त्ता का ज्ञान कराता है। नेत्रादि देखने आदि के साधन होने से देखने वाले आत्मा का बोध= अनुमान कराते हैं।

तनिक अपने शारीरिक व्यवहार पर दृष्टि डालें तो हमें दो प्रकार के व्यवहार होते स्पष्ट दिखाई देंगे। एक तो ऐसा व्यवहार

अनेक बार ऐसा होता है कि आंखें खुली रहने पर भी सामने का पदार्थ नहीं दीखता। कान खुले रहने पर भी पास हो रहा शब्द सुनाई नहीं देता। ऐसा क्यों? ज्ञानीजन बताते हैं कि जिसे नेत्रादि बाह्य इंद्रियां या करण हैं, ऐसे ही एक अंतरिन्द्रिय या अंतःकरण है। जब तक बाह्य इंद्रिय के साथ उसका मे न हो तब तक उस इंद्रिय द्वारा होने वाला ज्ञान नहीं होता। इसी कारर नेत्रादि के खुला रहने पर भी उसका मेल न होने से नेत्रादि से होने वाला ज्ञान नहीं हो पाता। उसका एक स्वभाव यह है कि वह एक समय में एक ही इंद्रिय से मेल कर सकता है। इसलिए जब आंख से ज्ञान हो रहा होता है तब दूसरी किसी इंद्रिय से ज्ञान नहीं हो पाता। उसे मनुजी ने 'मन' नाम दिया है, यतः यह दोनों प्रकार की इंद्रियों से मेल करता है, अतः अपने इस गुण के कारण यह उभयात्मक= ज्ञान- कर्मैन्द्रिय= उभयेन्द्रिय कहाता है।

है कि बाहर से अंदर को पदार्थ या उनका ज्ञान जा रहा है। जैसे आंखें बाहर के रूपवान् पदार्थों तथा उनके रूप का ज्ञान कराती हैं। कर्ण बाहर हो रहे शब्दों को भीतर पहुंचाते हैं। नासिका बाहर की सुगंध दुर्गंध को अंदर पहुंचा रही है। जिह्वा- रसना बाहर के खट्टे-मीठे, तीते, फीके आदि रसों का भान करा रही है। त्वक्= स्पर्शेन्द्रिय बाह्य पदार्थों के स्पर्श= शीत-उष्ण, कठोर= मृदु का ज्ञान कराती है। ये पांचों की पांचों इंद्रियां बाहर से पदार्थों का ज्ञान अंदर पहुंचाती हैं, यतः ये बाह्य पदार्थों का ज्ञान कराती हैं। अतः ज्ञानेन्द्रियां कहाती हैं।

दूसरे प्रकार का व्यवहार इससे विलक्षण है, उसमें भीतर की उठी भावनाओं को बाहर का रूप दिया जा रहा है। मल, मूत्र भीतर से बाहर आते हैं, हाथ उठाते हैं, पैरों से चलते हैं, भीतर के भावों को वाणी से बोलकर प्रकट किया जाता है इनके द्वारा हमें कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होता, केवल क्रिया होती है, अतः कर्मैन्द्रिय कहलाते हैं। इन दो प्रकार के व्यवहारों के अतिरिक्त एक और व्यवहार हो रहा है, उसका भी विचार कर लेना चाहिए। अनेक बार ऐसा होता है कि आंखें खुली रहने पर भी सामने का पदार्थ नहीं दीखता। कान खुले रहने पर भी पास हो रहा शब्द सुनाई नहीं देता। ऐसा क्यों? ज्ञानीजन बताते हैं कि जिसे नेत्रादि बाह्य इंद्रियां या करण हैं, ऐसे ही एक अंतरिन्द्रिय या अंतःकरण है। जब तक बाह्य इंद्रिय के साथ उसका मेल न हो तब तक उस इंद्रिय द्वारा होने वाला ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार नेत्रादि के खुला रहने पर भी उसका मेल न होने से नेत्रादि से होने वाला ज्ञान नहीं हो पाता। उसका एक स्वभाव यह है कि वह एक समय में एक ही इंद्रिय से मेल कर सकता है। इसलिए जब आंख से ज्ञान हो रहा होता है तब दूसरी किसी इंद्रिय से ज्ञान नहीं हो पाता। उसे मनुजी ने 'मन' नाम दिया है, यतः यह दोनों प्रकार की इंद्रियों से मेल करता है, अतः अपने इस गुण के कारण यह उभयात्मक= ज्ञान- कर्मैन्द्रिय= उभयेन्द्रिय कहाता है।

इतने वर्णन से यह स्पष्ट हो गया है कि यह इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। इन्द्रियों को वश में करने का आदेश है। एक-एक इन्द्रिय को वश करने के यत्न में बहुत आयास भी लगता है और सफलता भी संदिग्ध सी रहती है, अतः मनुजी कहते हैं इन्द्रियों को वश करने के लिए इस मन को वश में करना चाहिए। इसके वशीभूत हो जाने से शेष सभी इन्द्रियां वश में हो जाएंगी। लोक में भी कहावत है- मनके हारे हार है मन के जीते जीत, अतः मन को वश में करने का यत्न करना अत्यंत हितकारी है।

इन्द्रियों को वश में करने का लाभ बताते हैं।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।

संनियम्य तु तान्मेव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ २। ९५ ॥

इन्द्रियों के प्रसंग से मनुष्य सचमुच दोष को प्राप्त करता है।

(यह बात सर्वविदित है। मानसिक विचारों के अनेक कारणों में से एक कारण इन्द्रिय-प्रसंग भी है। खेल-तमाशा देखने से जैसे कार्य में क्षति होती है, वैसे ही अतिमात्र बोलने में भी हानि होती है। इन्द्रिय व्यवहार के लिए मिलती है। अनिवार्य कार्य इनसे न लेना भी हानिकारक है। उदाहरणार्थ वाणी बोलने के लिए है, आवश्यकता पड़ने पर न बोलना वाणी का तिरस्कार है, प्रयोजन के बिना बोलना भी बेकार है, अतः अनिवार्यता के अतिरिक्त इनको नियंत्रित ही रखना चाहिए।)

उसी बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥

काम काम के उपभोग से कभी शांत नहीं होता। जैसे अग्नि हविः= घृतादि से बढ़ता है, ऐसे ही काम भी विषय-सेवन से अधिक ही बढ़ता है।

किसी विषय को शांत करने के लिए उसका उपयोग या सेवन साधन नहीं है, प्रत्युत वह उसको बढ़ाता है। उदाहरण के लिए कोई मनुष्य आग को बुझाने के लिए उसमें घृतादि पदार्थ डालता है तो उससे अग्नि शांत न होकर और अधिक भड़कता है, ऐसे ही विषयाभिलाषा विषयों के सेवन से और बढ़ती है।

यश्चैतान् प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलस्त्यजेत्।

प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ २। ९५ ॥

कोई इन सब विषयों को प्राप्त कर ले और और इनको त्याग दे। सब कामनाओं (विषयों के संबंध वाली) की प्राप्ति की अपेक्षा उनका त्याग उत्तम है। (प्रवाह के अनुकूल बह जाने में वीरता नहीं है। प्रवाह के उल्टा चलने में पराक्रम का परिचय मिलता है। विषयों से विवश हुए पशु भी उनमें प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य को अपनी विशेषता का परिचय देना चाहिए।)

संयम का साधन बताते हैं-

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया।

विषयेषु प्रजुष्टानि तथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ २। ९६ ॥

विषयों का सेवन करने मात्र से, विषयों से प्रीति करने वाली ये इन्द्रियां संयत नहीं की जा सकतीं, जैसे कि ये नित्य=मनन= विचार से (वश में की जा सकती हैं)। अर्थात् हठ से इन्द्रिय-संयम असम्भव है। वह पाखंड का रूप हो जाता है। विचारपूर्वक विषयों में दोषदर्शन करने जब विषयों से उपरति होती है तब सचमुच इन्द्रियसंयम होने लगता है, अतः इन्द्रिय संयम के लिए विषयों के स्वरूप और उनसे होने वाले परिणाम का विचार नित्य करते रहना चाहिए।

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपसां च।

न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छान्ति कर्हिचित् ॥ २। ९७ ॥

वेद (वेदाध्ययन), त्याग, यज्ञ, नियम तथा तप कभी भी दुष्ट स्वभाववाले को सिद्धि नहीं देते।

यदि विचार पवित्र नहीं हैं, भाव मलिन हैं तो वेदाध्ययन, जप, तप सब व्यर्थ होते हैं, क्योंकि ये तो दम्भ के कारण बन जाते हैं। लोकलज्जा के कारण एक मनुष्य विषयों का सेवन नहीं करता, किंतु मन में दिन-रात विषयों का चिंतन करता रहता है तो उसका यह बाह्य संयम उसे कुछ भी लाभ नहीं दे सकता। आचार के साथ विचार भी पवित्र हो, तभी कल्याण हो सकता है।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।

न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ २। ९८ ॥

जो मनुष्य सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर, सूँघकर न प्रसन्न होता है, न ग्लानि करता है, उसे जितेन्द्रिय जानना चाहिए। (पदार्थों के- विशेषकर भौतिक पदार्थों के स्वरूप पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि इन्द्रिय-संबंध होने पर यह अपने गुणों का परिचय देते हैं। ज्ञानी मनुष्य उसको पदार्थ का स्वभाव जानकर सुख-दुःख नहीं मानता। जो ऐसा कर पाता है, उसे जितेन्द्रिय समझना चाहिए।)

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ २। ९९ ॥

सभी इन्द्रियों में से यदि कोई एक भी इन्द्रिय स्थलित होती है तो उसमें मनुष्य की बुद्धि का नाश हो जाता है, जैसे मशक में से जल चू जाता है। (सभी इन्द्रियों पर ज्ञानाकुश रखना चाहिए, किसी की उपेक्षा व प्रमाद नहीं करना चाहिए।)

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।

सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिप्यन्योगतस्तनुम् ॥ २। १०० ॥

इन्द्रिय-समूह को वश में करके तथा मन को संयत करके, योग के द्वारा शरीर को क्षीण न करता हुआ साधक सब अर्थों (धर्मादि) की सिद्धि करे। (धर्मार्थकाममोक्ष इन चारों पदार्थों की सिद्धि के लिए योग परम साधन है, और योग के लिए इन्द्रियनिग्रह तथा मनोदमन अनिवार्य है, अतः इन सबका अनुष्ठान परमावश्यक है। मनुजी कहते हैं कि ऋषियों का आदेश है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' धर्म के साधनों में शरीर मुख्य है, अतः इस क्षीण न करना। वह योग नहीं रोग है, जिससे शरीर क्षीण होता हो। ऋषि लोग परमात्मा के दिये पदार्थ का महत्त्व तथा उपयोग समझते हैं)।

सावित्रीमात्रसारोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।

नायन्त्रितास्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ २। ११८ ॥

केवल गायत्री-मंत्र के जप में तत्पर सुसंयमी मनुष्य श्रेष्ठ है, किंतु सर्वभक्षी, सर्वविक्रयी, असंयमी चतुर्वेदवेत्ता भी भला नहीं है।

(वैदिक धर्म में भोजन पर नियंत्रण है, इसी प्रकार व्यापार पर भी नियंत्रण है, जो उच्छृंखल होकर अभक्ष्य भक्षण तथा अविक्रय के विक्रय में लग जाए, वह असंयमी चाहे चारों वेदों का ज्ञानी भी हो तो भी वह भला नहीं है। उसकी अपेक्षा केवल गायत्री जानने वाला, किंतु संयमी मनुष्य उत्तम है। संयम की महिमा इससे अधिक नहीं कही जा सकती।



यज्ञ का वैज्ञानिक स्वरूप



य

ज्ञ के दो लाभ हैं जिनका जिक्र हम यहां करेंगे। पहला प्रकृति पुरुष को लाभ और दूसरा सामाजिक पुरुष को व्यक्तिगत लाभ। हम यहां उसके आध्यात्मिक और सामाजिक विशेषताओं की बात नहीं करेंगे। जहां तक पर्यावरण शुद्धता का संबंध है व्यक्तिगत आरोग्य और वायुमंडल की शुद्धता ये दोनों बातें पर्यावरण के तहत बड़ी आवश्यक हैं।

जब तक यज्ञ व्यवस्था थी तब तक मनुष्य समुदाय सुखी था। लेकिन जब यज्ञ संस्था को विकृति प्राप्त हुई और उसमें नाना प्रकार की बुराइयां आ गईं, यह उपकारक संस्था लोप होती चली गई। महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर ने इस विकृत यज्ञ व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह किया। यदि स्वामी दयानंद की तरह वे दोनों महापुरुष यज्ञ के असली मकसद को ढूंढ़ निकालने तो आज यह यज्ञ संस्था लुप्त न होती, बल्कि उसका वैज्ञानिक स्वरूप और निखार दुनिया के सामने आता। अस्तु, विवेच्य विषय है- यज्ञ का वैज्ञानिक स्वरूप।

पहले यह बात आ ही गई है कि पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता, पदार्थ का रूप परिवर्तित हो जाता है। सृष्टि में हर पदार्थ विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं। जमीन पर पानी द्रव्य रूप में रहता है वही ठंड प्रदेशों में बर्फ के रूप में रहता है और वही वायुमंडल में वाष्प रूप में रहता है। एक ही पदार्थ के तीन रूप हुए। इसी तरह अग्नि में जो भी हम स्थूल पदार्थ डालते हैं अग्नि अपने स्वभावानुसार उसे सूक्ष्म पदार्थ में तब्दील कर देती है। साधारण लोग इसे नष्ट कर देना समझते हैं। यज्ञ में अनेक तरह की औषधियां डाली जाती हैं वे सूक्ष्म होकर तीन जगहों पर जाती हैं और अपना असर दिखलाती हैं, अर्थात् पृथ्वी अंतरिक्ष और ह्युलोक में। पृथ्वी पर यज्ञ में डाली गई घृतयुक्त औषधियां मनुष्य प्राणी में तथा वनस्पतियों पर प्रभाव डालती हैं।

**हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्मांरऽआ
विवासति। हविष्मां देवोऽधारो
हविष्माऽस्तु सूर्यः॥**

अर्थात्- हे विद्वान् लोगों! आप वे यज्ञ करें जिससे पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं ह्युलोक, जल, औषधियां आदि सब प्रकार के यज्ञ की हवि से युक्त होकर नाना प्रकार के

डॉ. चन्द्रशेखर लोखंडे

सुख एवं उपकार को हों। यज्ञ द्वारा नाना प्रकार के लाभ प्राप्त हों।

**वसो पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि
मातरश्चिनो धर्मोऽसि। विश्वधाऽसि
परमेण धाम्ना दृहस्व मा हवामा ते
यज्ञपतिर्हवार्षित्॥** -यजु १।२

पदार्थ- हे विद्यायुक्त मनुष्य तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है, (द्यौः) जो विज्ञान के प्रकाश हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है। जो (पृथ्वी) वायु के साथ देश-देशान्तरों में फिरने वाला (असि) है। जो (मातरिश्चिनोः) वायु को (धर्मः) शुद्ध करने वाला (असि) है, जो (विश्वधाः) संसार को धारण करने वाला (असि) है जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (दृहस्व) सुख का बढ़ाने वाला है। इस यज्ञ का (मा) मत (हवाः) त्याग कर तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उसको (मा) मत (हवाषित) त्यागे।

इस यजुर्वेद के मंत्र में उस पवित्रमय और सुखदायक यज्ञ को पृथ्वी तथा देश-देशान्तरों में फैलकर प्राणी जगत को आरोग्य और सुख का देने वाला कहा है। ऐसे यज्ञ का न तो स्वयं त्याग करना चाहिए और न दूसरों को त्याग करवाने देना चाहिए। अर्थात् पर्यावरण की पवित्रता के लिए जहां-तहां यज्ञ का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। इस वेद-मंत्र में स्पष्ट रूप से यज्ञ को प्राणी जगत् और पर्यावरण को सुखकारक बनाने वाला साधन कहा गया है न कि यज्ञ परलोक (स्वर्ग) में ले जाने वाला साधन है।

यज्ञ में दी गई हवि दो जगहों पर विशेष कार्य करती है, एक भूमि पर बसे हुए लोगों पर और दूसरे अंतरिक्ष में।

सबसे पहले हवन में डाली गई सामग्री मनुष्य और प्राणियों के श्वास-प्रश्वास के द्वारा फेफड़ों में पहुंचती है वहां रक्त में मिलकर हृदय तथा अन्य भीतरी अंगों में जाकर उन्हें सक्रिय करती है। मरणासन्न व्यक्ति को जिस तरह श्वास के द्वारा ऑक्सीजन देकर बचाया जाता है उस समय टेब्लट, इंजेक्शन या अन्य मार्ग से दी हुई दवाई इतनी जल्दी असर नहीं करती जितनी कि श्वास के द्वारा दी गई दवाई कार्य करती है। यही सिद्धांत यज्ञ में दी गई वनस्पत्यौषधि की आहुति पर लागू होता है।

जो औषधि जितनी सूक्ष्म होगी उसका शरीर पर उतना ही तीव्र असर होगा। जड़ी बूटी से सूक्ष्म चूर्ण, चूर्ण से सूक्ष्म द्रव्य पदार्थ, द्रव्य पदार्थ से सूक्ष्म रस (रसायन), रस से सूक्ष्म भस्म और भस्म से सूक्ष्म नस्य (जो नाक के द्वारा दिया जाता है) इसी प्रक्रिया को यज्ञ में किया जाता है। स्थूल वनस्पति और औषधियों को अग्नि में हवि देकर उसके औषधि गुणों को कई गुना बढ़ाकर वायुमंडल में पहुंचाया जाता है। मनुष्य और अन्य जीव-जन्तु उन आहुतियों को श्वास-प्रश्वास द्वारा ग्रहण करते हैं तब वे सूक्ष्म औषधियों के परमाणु शरीर के रक्ताभिसरण के साथ विभिन्न अंगों पर प्रभाव डालते हैं और उनकी स्वाभाविक क्रियाओं को और सक्रिय करते हैं।

इसी उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि एक लाल मिर्च एक व्यक्ति खाए तो भी उस पर उतना असर नहीं करती जितना कि वह मिर्च यदि जलते हुए चूल्हे में डाल दी जाय। चूल्हे में डाली गई उस मिर्च का सारे मुहल्ले पर क्या असर होता है यह सभी भली-भांति जानते हैं। मिर्च के स्थूल गुणों को अग्नि ने हजार गुणा सूक्ष्म बना दिया। स्थूलता में शक्ति न्यूनतम होती है और सूक्ष्मता में शक्ति अधिकतम होती है।

यज्ञ में डाला गया घृत सूक्ष्म होकर वायुमंडल में मिश्रित होकर प्राणियों को आरोग्य प्रदान करता है। फ्रांस के विज्ञानवेत्ता प्रोफेसर ट्रिलवर्ट का कथन है जलती हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की इतनी शक्ति है कि इससे चेचक, हैजा तथा यक्ष्मा जैसी बीमारियां नष्ट हो सकती हैं। फ्रांस के ही विद्वान डॉ. हैपिफन का मत है कि घी के जलने से कई रोगों के जन्तु घृतकणों के सम्पर्क से नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार डा. एम.ट्रेक ने मुनक्का व किसमिस आदि फलों को जलाकर रखा तो उसमें टाईफाइड के कीटाणु ३० मिनट में नष्ट हो गए। डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश डीएससी ने यज्ञ पर अनुसंधान कर यह निष्कर्ष निकाला कि सामग्री और घृत के परमाणुओं से फोरमेलिहाईड गैस उत्पन्न होती है। यह वायुमंडल में फैलकर रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट कर देती है। फोरमेलिहाईड का जलवाष्प के कणों पर भी प्रभाव दिखाई देता है। यज्ञ में डाली हुई घी और सामग्री का हमारे फेफड़ों पर सबसे पहला असर होता है। जिस तरह दूषित वायु में हमारा दम घुटने लगता है और जी बेचैन होने लगता है उसी तरह का परिणाम यज्ञ की औषधियुक्त वायु से नहीं होता, बल्कि प्रसन्नता होती है। इसी का अर्थ यह हुआ कि यज्ञ में डाली हुई औषधियुक्त सामग्री हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकर है। अग्नि में घी डाला जाता है जो घी एक कटोरी था, वह औषधि कणों के साथ मिलकर हजारों गुणा सूक्ष्म होकर घर और आस-पड़ोस में फैल जाता है।

सामग्री में गुग्गुलु, जायफल, जावित्री, मुनक्का, कस्तुरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चंदन, इलायची, तुलसी, जटामांसी, छलपुड़ी, लौंग, नागरमोथा, कपूर, कचरी, कश्मीरी धूप ये सब पदार्थ सुगंधी को बढ़ाने वाले तथा घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द, शर्करा आदि पदार्थ शारीरिक बल को बढ़ाने वाले हैं। पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व, चंदन और बदाम वृक्ष की समिधाएं जो प्रायः निर्धूम होती हैं और दुर्गंध पैदा नहीं करती। यज्ञाग्नि इन पदार्थों को सूक्ष्म करती है और वायुमंडल में फैलाती है।

आजकल सर्दी, जुकाम, खांसी तथा दमा की चिकित्सा के लिए 'इनहेलर' पदार्थों का बहुत उपयोग हो रहा है। यज्ञ से उठने वाली औषधियुक्त वायु एक प्रकार से 'इनहेलर' का ही काम करती है। डॉ. सर्दी-जुकाम में उबलते हुए पानी में थोड़ा विकस या बाम डालकर कपड़े से ढंककर श्वास लेने की सलाह देते हैं और उसका शत प्रतिशत परिणाम रोगी पर दिखाई देता है अतः श्वास के द्वारा की गई चिकित्सा से कोई इंकार नहीं कर सकता, सिर्फ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यज्ञों में डाली जाने वाली पारंपरिक औषधियों या वनस्पतियों की समिधा के अलावा अन्य औषधियुक्त वनस्पतियों के प्रयोग भी हमें करने चाहिए। यज्ञ को प्रयोगात्मक रूप में हमें देखना चाहिए न कि एक स्थिर कर्मकाण्ड के रूप में।

अग्नि हुतं हविः सम्यक् आदित्यं उपतिष्ठति। - मनु स्मृति

सृष्टि में हर पदार्थ विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं। जमीन पर पानी द्रव्य रूप में रहता है वही ठंडे प्रदेशों में बर्फ के रूप में रहता है और वही वायुमंडल में वाष्प रूप में रहता है। एक ही पदार्थ के तीन रूप हुए। इसी तरह अग्नि में जो भी हम स्थूल पदार्थ डालते हैं, अग्नि अपने स्वभावानुसार उसे सूक्ष्म पदार्थ में तब्दील कर देती है। साधारण लोग इसे नष्ट कर देना समझते हैं। यज्ञ में अनेक तरह की औषधियां डाली जाती हैं, वे सूक्ष्म होकर तीन जगहों पर जाती हैं और अपना असर दिखलाती हैं, अर्थात् पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक में। पृथ्वी पर यज्ञ में डाली गई घृतयुक्त औषधियां मनुष्य, प्राणी में तथा वनस्पतियों पर प्रभाव डालती हैं

अग्नि में डाली गई हवि सूक्ष्म होकर वायुमंडल में फैल जाती है तथा द्युलोक की ओर अग्रसर होती है।

यूकिलिप्टिस (नीलगिरी) वृक्ष से निकलने वाले तेल पर अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं, नई-नई दवाइयां बनायी जा रही है। यूकिलिप्टिस के तेल को शीशी में बंद कर रखें तो उसका असर कुछ नहीं दिखाई देता, लेकिन इस तेल को अग्नि पर डाला जाय तो चारों ओर उसके अणु फैलकर सर्दी-जुकाम के असर को कम कर देते हैं, अनेक लोग लाभान्वित होते हैं। जब वैज्ञानिक सिद्धांत निश्चित है कि पदार्थ नष्ट नहीं होता तब उसके परिवर्तित रूप पर अनेक प्रयोग कर हमें यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप को आगे लाना चाहिए।

वसोः पवित्रमसि शतधारे वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनानु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्त्वा कामधुक्ः॥

-यजु. १।३

पदार्थ- जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि करने वाला कर्म (असि) है तथा जो (सहस्रधारम्) अनेकप्रकार के हजारों ब्रह्माण्ड को धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख देने वाला (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (सविता) वसु और देवों की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर (पुनानु) पवित्र करे।

हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सविता जो (वसोः) यज्ञ है, उस (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान (शतधारण) बहुत विद्याओं को धारण करने वाले वेद और (सुप्त्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिए। हे विद्वान पुरुष! तू (काम) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन सी वाणी के अभिप्राय को (अधुक्ः) अपने मन में पूर्ण करना चाहता है अथवा जानना चाहता है।

इस मंत्र का तात्पर्य यह है कि यज्ञ को सैकड़ों प्रकारों से हम संसार को पवित्र और शुद्ध बनाए रखें जो यज्ञस्वरूप परमात्मा ब्रह्माण्ड को पवित्र और शुद्ध रखकर सुखमय बनाए। यज्ञ के माध्यम से हम वेदरूपी पवित्र वाणी से परिचित हों तथा वेद विचारों की रक्षा कर सकें।

००

वैदिक चिंतन : सोम की प्रजाएं

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्तस्य।

सूर्या नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेद। ऋ १.४३.९

(सोम)! (याः ते प्र-जाः) जो तेरी प्र-जा (होती हैं वे) (अ-मृतस्य परस्मिन् धावन्) अ-मृत के पर धाम में, (ऋतस्य नाभा) ऋत की नाभि में (अ-भूषन्तीः) वि-भूषित (रहा करती हैं) सोम (मूर्धा) मूर्धास्य-मूर्धन्य (तू) (वेनः) कामना कर, चाह, प्यार कर, (वेदः) समझ, प्राप्त कर।

1. मंत्र में दो बार सोम को संबोधन किया गया है। प्रथम, प्रजापति अर्थ में, और दूसरा, आत्मा के लिए। जिसमें सोम्यता, सौन्दर्य और प्रियता होती है उसे सोम कहते हैं। प्रजापति से अधिक सोम्य, सुंदर और प्रिय अन्य कोई हो ही क्या सकता है। आत्मा भी स्वरूप से सोम्य और सुंदर है, स्वभावतः प्रत्येक को अपना आत्मा भी सर्वातिशय प्रिय होता ही है।

2. भक्तजन बड़े प्रेम से गाय़ा करते हैं, 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतोय रयीणाम्।' ऋ 10.121,10, य 10.20,23.65

(प्रजापते! नहीं व्याप रहा है, तुझसे भिन्न और कोई भी, इन, उन, प्रादुर्भूतों को। तेरे प्रति हम करें कामना जो जो, पूरी होवे सदा हमारी वह वह। हम हो ऐश्वर्यों के स्वामी)।

इस वैदिक प्रगति का प्रगान करते हुए वे समझ रहे होते हैं कि सभी प्रजापति की प्रजा हैं, और इसीलिए वह उनकी मनोकामनाओं को पूरी करेगा। उन्हें पता नहीं होता है कि सभी मानव भगवान् की प्रजा नहीं हैं। प्रभु की प्रजा बनना आसान काम नहीं है। वह तो सर्वातिशय कठिन काम है। उसकी प्रजा बनने की कुछ योग्यताएं हैं जिनका सम्पादन उत्कट आत्मसाधना की अपेक्षा रखता है।

एक पिता के पांच पुत्र हैं। उससे किसी ने पूछा, 'आपके कितने पुत्र हैं?' उसने उत्तर दिया, 'होने को मेरे पांच पुत्र हैं पर पुत्र तो मेरा एक ही है।' उसी प्रकार, सभी मानव प्रजापति की 'प्रजाः' हैं। पर 'प्रजाः' तो कोई विरले ही हैं। प्र का अर्थ है उकृष्ट, सु। जाः का अर्थ है सन्तानें। प्रजाः का अर्थ है सुसन्तानें। पुत्री और सुपुत्री, पुत्र और सुपुत्र, संतान और सुसंतान के भेद को समझकर ही हमें प्रजापति से मनोकामनाओं की पूर्ति की

स्वामी विद्यानंद 'विदेह'

अमृत धाम ही परम धाम है। वही प्रजापति की सच्ची प्रजा का आत्मनिवास है। दो ही तो धाम हैं, एक, अमृत (अ-मृत) धाम, और दूसरा, मृत धाम। अमृत धाम कभी मृत नहीं होता है, वह तो अजर, अमर, एकरस, अपरिवर्तनीय, कूटस्थ है। जो मृत धाम है वह मरता है, मिटता है, परिवर्तनचक्र में सतत, निरंतर परिवर्तित होता रहता है। दूसरे शब्दों में, दो ही धाम हैं। एक, प्रजापति का निज धाम जिसे ब्रह्मधाम अथवा विष्णु का परम धाम कहते हैं। दूसरा है मायाधाम जो प्रकृतिजन्य अथवा प्राकृत है।

ब्रह्मधाम अमृत धाम है। मायाधाम मृत धाम है। प्रकाश और पवित्रता की, विवेक और पावनता की जो जीवनपद्धति है वही अमृत का परम धाम है। अंधकार और अपवित्रता की, अज्ञान और अपावनता की जो जीवनपद्धति है

प्रार्थना करनी चाहिए। सुपुत्र की कामनाएं सुकामनाएं होती हैं, और इसीलिए उसका सुपिता उसकी कामनाओं को पूर्ण करने में प्रसन्नता अनुभव करता है। जब आप प्रजापति की प्रजा बन जाएंगे तब वह आपकी कामनाओं को यथासमय, यथावत् पूरी कर रहा होगा। इस मंत्र में प्रजा के लक्षण बताए गए हैं।

3. आत्मसोम अपने प्रियतम प्रजापतिसोम से सर्वात्मना कह रहा है, 'सोम! जो तेरी प्रजाएं होती हैं वे अमृत के परम धाम में अपि च ऋत की नाभि में विभूषित होती हैं।' जो प्रजापति की प्रजा बन जाता है वह किसी राजा के राज्य में निवास करता हुआ भी अमृत के परम विभूषित धाम में सुशोभित रहता है और ऋत की नाभि में संस्थित रहता है।

1). अमृत धाम ही परमधाम है। वही प्रजापति की सच्ची प्रजा का आत्मनिवास है। दो ही तो धाम हैं, एक, अमृत (अ-मृत) धाम, और दूसरा, मृत धाम। अमृत धाम कभी मृत नहीं होता है, वह तो अजर, अमर, एकरस, अपरिवर्तनीय, कूटस्थ है। जो मृत धाम है वह मरता है, मिटता है, परिवर्तनचक्र में सतत, निरंतर परिवर्तित होता रहता है। दूसरे शब्दों में, दो ही धाम हैं। एक,

प्रजापति का निज धाम जिसे ब्रह्मधाम अथवा विष्णु का परम धाम कहते हैं। दूसरा है मायाधाम जो प्रकृतिजन्य अथवा प्राकृत है। ब्रह्मधाम अमृत धाम है। मायाधाम मृत धाम है।

प्रकाश और पवित्रता की, विवेक और पावनता की जो जीवनपद्धति है वही अमृत का परम धाम है। अंधकार और अपवित्रता की, अज्ञान और अपावनता की जो जीवनपद्धति है। वह नरक का निकृष्ट धाम है। जो अमृत के नरम धाम में निवास करते हैं वे ही प्रजा हैं, और प्रजापति उनकी ही कामनाएं पूरी करता है।

2). 'ऋत' नाम सत्य का है। सदाचार ही सत्य की मूर्धा है। सदाचारविहीन सत्य निरर्थक है। सत्य और सदाचार, दोनों ही जिनके जीवनों में सुभूषित हैं वे ही प्रजा हैं, और प्रजापति उन्हीं की कामनाएं पूरी करता है।

संयम ही 'ऋत' की नाभि है। जो संयमी (जितेन्द्रिय) हैं वे ही प्रजाएं हैं। संयम ही सत्य और सदाचार की रक्षा करता है। तो जो प्रजापतिसोम की प्रजाएं हैं वे आत्मना प्रजापति में समाहित रहती हैं और शरीर मायाधाम में मायापति के सुनियमों का पालन करती हुई प्रभुप्रेरित सुसाधों को संसाधना करती हैं। उनमें सत्य के प्रसार की तत्परता निवास करती है।

4. प्रजा बनकर ही हम प्रजापति के प्यार के अधिकारी बनते हैं। जो प्रजा बन जाते हैं उनके भीतर ही प्रजापति का प्रेम प्राप्त करने की अभिलाषा जागृत होती है। जिसे प्रजापति का प्यार प्राप्त है उसे सब कुछ प्राप्त है।

5. जो प्रजाएं हैं वे ही वेदमंत्रों के अर्थों और रहस्यों का उद्घाटन करती हैं और उन्हीं में वेद की ऋचाएं अपना अथार्थ आशय प्रकट करती हैं।

ओह! कितना कठिन है प्रजापति की प्रजा बनना। आत्मना प्रजापति के परमधाम में स्थित रहना, सत्य का ही चिंतन करना और विश्व की नाभि (केन्द्र) बनकर तत्परता के साथ सत्य का प्रसार करना, यह तो बड़ी विकट साध है।

पर जिसने प्रजापति की प्रजा बनने का संकल्प ले लिया है वह तो बनकर ही रहेगा। आत्मना प्रजापति की प्रजा बनने की साधना परम कमनीय है। उसकी कामना कर और अपनी उस कामना को संसिद्ध कर।

वेद संस्थान के प्रकाशन 'वेदलोक' से।

००

ब्राह्मण के कर्तव्य, कर्म और गुण



ओमकार शास्त्री

संस्कृत प्रवक्ता, आर्ष गुरुकुल, नोएडा

हमारे समाज को चार वर्णों में बांटा गया है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जिससे समाज तथा देश की व्यवस्था व्यवस्थित रूप से चल सके। चारों वर्णों में ब्राह्मण को उत्तम स्थान तथा अन्य तीनों वर्णों का गुरु उपदेशकर्ता, आचार्य आदि बतलाया गया है क्योंकि हमारे महापुरुषों और धर्मग्रन्थों में बतलाया है कि जिस राष्ट्र या देश में विद्वान, ब्राह्मण अपने मार्ग से भटक जाते हैं, वह देश, वहां का राजा और समस्त प्रजा का पतन हो जाता है। विद्वान के उपदेश के बिना उत्तम शासक भी अपने मार्ग से हट जाता है और अपने लिये जीने लगता है। इसलिये हमारे धर्मग्रन्थों में सभी के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है।

महर्षि मनु ने ब्राह्मण के कर्तव्यों और लक्षणों पर प्रकाश डाला है-

अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पगत्।।

मनुस्मृति-1-88।।

अर्थात् निष्कपट होकर प्रीतिपूर्वक पुरुषों और स्त्रियों को पढ़ावें और स्वयं पूर्ण विद्या पढ़ें, यज्ञ करें और करावें, विद्या व सुवर्णादि का सुपात्रों को दान देवें और न्यायपूर्वक धनोपार्जन करने वाले ग्रहस्थों से दान लेवें।

इनमें तीन कर्म- पढ़ना, यज्ञ करना, दान लेना जीविका है। महर्षि मनु लिखते हैं कि दान लेना उत्तम कर्म नहीं है। 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' -

मनु। लेकिन पढ़ाकर और यज्ञ कराकर जीविका करना अर्थात् दान लेना उत्तम है।

योगीराज श्रीकृष्ण गीता में लिखते हैं-

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म

स्वभावजम्।। गीता-18-42।।

मन को अधर्म में न जाने दें और मन में अधर्म की इच्छा भी न उठने दें। श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से दूर रखें और धर्म प्रवृत्त करें। ब्रह्मचर्य, विद्या, योगाभ्यास की सिद्धि के लिए शीत, उष्ण, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, तृषा, मानापमान आदि द्वंद्व का सहना। राग-द्वेष-मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को पवित्र रखना। क्षमा अर्थात् कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावे तो भी उन पर कृपालु रहकर क्रोधादि का न करना। अभिमान न करना, दम्भ स्वात्म-श्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल, शुद्ध-पवित्र भाव रखना।

सब शास्त्रों को पढ़के विचार कर उनके अर्थ को यथावत जानकर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य रखना। पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान और क्रिया कुशलता तथा योगाभ्यास से साक्षात् करके यथावत उपकार ग्रहण करना-कराना, परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक, परजन्म, पूर्वजन्म, कर्मफल और मुक्ति से विमुख न होना। ये नव कर्म और गुण धर्म को समझना। सबसे उत्तम गुण, कर्म,

ब्रह्मचर्य, विद्या, योगाभ्यास की सिद्धि के लिए शीत, उष्ण, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, तृषा, मानापमान आदि द्वंद्वों को सहना। राग-द्वेष-मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को पवित्र रखना। क्षमा अर्थात् कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावे तो भी उन पर कृपालु रहकर क्रोधादि का न करना। अभिमान न करना, दम्भ आत्म-श्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल, शुद्ध-पवित्र भाव रखना।

स्वभाव को धारण करना। ये गुण कर्म जिस विद्वान या ब्राह्मण में हों वे ब्राह्मण या विद्वान कहलाने के योग्य हैं। अन्यथा नहीं।

००

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनमोल विचार

- वेदों में वर्णित सार का पान करने वाले ही ये जान सकते हैं कि 'जिन्दगी' का मूल बिन्दु क्या है।
- ये 'शरीर नश्वर' है, हमें इस शरीर के माध्यम से केवल अवसर मिला है, स्वयं को !माणित करने का, कि 'मनुष्यता' और 'आत्मविवेक' क्या है।
- मानव जीवन में 'तृष्णा' और 'लालसा' है, और ये दुःख के मूल कारण है।
- अहंकार एक मनुष्य के अन्दर वो स्थित लाती है, जब वह 'आत्मबल' और 'आत्मज्ञान' को खो देता है।
- क्रोध का भोजन 'विवेक' है, अतः इससे बचके रहना चाहिए।

- क्योंकि 'विवेक' नष्ट हो जाने पर, सब कुछ नष्ट हो जाता है।
- क्षमा करना सबके बस की बात नहीं, क्योंकि ये मनुष्य को बहुत बड़ा बना देता है।
- 'काम' मनुष्य के 'विवेक' को भ्रमा कर उसे पतन के मार्ग पर ले जाता है।
- मोह एक अत्यन्त विचित्र भ्रम है, जो बाहर से अति सुन्दर और अन्दर से अत्यन्त कष्टकारी है; जो इसमें फंसा वो पूरी तरह उलझ ही गया।
- लोभ वो अवगुण है, जो दिन प्रति दिन तब तक बढ़ता ही जाता है, जब तक मनुष्य का विनाश ना कर दे।

आर्य समाज का चौथा नियम...

प्रो. रत्न सिंह

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से पृथक् इसके जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज में रहता हुआ वह कई प्रकार के समूह बना लेता है। एक दृष्टि से सभी समूहोंको दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- स्वसमूह और परसमूह। स्वसमूह के सभी सदस्य अपने को उस समूह के अंदर रहने वाला मानते हैं और परसमूह के सदस्यों को अपने से बाह्य समझते हैं। उनके प्रति अपेक्षा, तिरस्कार, विरोध, भय, रोष और कभी-कभी घृणा भी रखते हैं। अपना परिवार, अपनी जाति और अपना मजहब स्वसमूह है। पराया परिवार, परायी जाति और पराया मजहब परसमूह है। स्वसमूह और परसमूह में खींचातानी रहती है। इसी को तनाव या संघर्ष कहते हैं। सामाजिक संघर्ष को बढ़ावा देने में पूर्वाग्रह का बहुत बड़ा हाथ रहता है। इसके कारण एक स्वसमूह के लोग अपने को परसमूह के सदस्यों से श्रेष्ठ और अधिक बुद्धिमान मानने लते हैं। अपनी निकृष्टतम वस्तु भी श्रेष्ठ है और पराई में कलह व अशांति उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। सामूहिक तनाव की शांति के अनेक उपाय समय-समय पर भिन्न-भिन्न विचारकों ने सुझाए हैं। हमारी सभ्यता में स्थायी शांति प्राप्त करने का स्वर्णिम उपाय आर्यसमाज के प्रस्तुत नियम में बतलाया गया है। बिना पूर्वाग्रह व पक्षपात के जो भी सत्य हो (चाहे वह अपने अनुकूल हो वा प्रतिकूल) उसे ग्रहण करना चाहिए और असत्य का परित्याग कर देना चाहिए।

इस नियम के होते हुए भी कई अविवेकी पुरुषों ने आर्य समाज पर हठ, दुराग्रह व पक्षपात का मिथ्या आरोप किया है। इन लोगों के विचार में आर्यसमाजी अपनी-अपनी कहता है, दूसरे की कभी नहीं सुनता और तार्किक होने के कारण अपनी असत्य बात को सत्य और दूसरे की सत्य बात को असत्य सिद्ध कर देता है। इन आक्षेपकर्ताओं का ध्यान हम महर्षि दयानंदजी के कतिपय वाक्यों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिनके आधार पर प्रस्तुत नियम की रचना की गई है। महर्षि दयानंद जी को सत्य अति प्रिय है, इसीलिए उन्होंने अपने अमर ग्रंथ का नाम 'सत्यार्थ प्रकाश' रखा है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- 'मेरा इस ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही

प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।'

महर्षि दयानंद ने कहीं भी अपने को साम्प्रदायिक पैगम्बरों को भांति पूर्ण ज्ञानी नहीं कहा है। पूर्ण ज्ञानी केवल ईश्वर है, मनुष्य अल्पज्ञ व अल्पशक्तिवाला है। इसलिए उससे भूल हो सकती है। इसी भावना से महर्षि लिखते हैं- 'इस ग्रंथ में जो कहीं-कहीं भूलचूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूलचूक रह जाए उसको जानने-जानने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जाएगा।' कितनी निरभिमानता व निष्पक्षता थी महर्षि में? हमें इस बात पर गर्व है कि इन सौ वर्षों में अभी तक महर्षि के सिद्धांतों में कोई भी व्यक्ति एक भी त्रुटि सिद्ध नहीं कर सका। महर्षि मानव-स्वभाव के दुर्बल पक्ष से पूर्ण परिचित थे। इसलिए वे लिखते हैं- 'और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका, खंडन व मंडन करेगा उस पर ध्यान न दिया जाएगा। हां, जो मनुष्य मात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य-सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।' महर्षि दयानंद ने स्पष्ट: इस तथ्य का स्वीकार किया है कि सभी मतों में विद्वान हुए हैं। यह बात भिन्न है कि पक्षपात का परित्याग करने में वे कहां तक सफल हो सके हैं। महर्षि का कथन है, 'यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतंत्र सिद्धांत, अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त-वर्तविं तो जगत का पूर्ण हित होवे।'

आर्यसमाज पर पक्षपात का दोषारोपण करने वाले महानुभावों से निवेदन है कि वे गंभीरता से महर्षि के इन वाक्यों पर विचार करें- 'यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मत-मतांतरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तने योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति-मंडन और प्रचार करते और दूसरे मत की निंदा, हानि और बंध करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता परंतु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर है।' सत्य का गला घोटने और स्वार्थ-सिद्धि के लिए अनेक पाखंडियां ने नये-नये मतों को जन्म देकर अपने को ईश्वर घोषित किया हुआ है। इस दुष्प्रवृत्ति का घोर विराध करते हुए महर्षि कहते हैं- 'मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमतांतर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किंतु जो सत्य है,

आर्यसमाज पर पक्षपात का दोषारोपण करने वाले महानुभावों से निवेदन है कि वे गंभीरता से महर्षि के इन वाक्यों पर विचार करें- 'यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मत-मतांतरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तने योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति-मंडन और प्रचार करते और दूसरे मत की निंदा, हानि और बंध करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता परंतु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।' सत्य का गला घोटने और स्वार्थ-सिद्धि के लिए अनेक पाखंडिया ने नये-नये मतों को जन्म देकर अपने को ईश्वर घोषित किया हुआ है। इस दुष्प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हुए महर्षि कहते हैं- 'मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमतांतर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किंतु जो सत्य है, उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझे अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।' आर्यसमाज पर हठ, दुराग्रह व पक्षपात के मिथ्यारोप का निराकरण करने के उपरांत प्रस्तुत नियम में पयुक्त 'सत्य' पद के अर्थ पर विचार किया जाता है।

उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझे अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।' आर्यसमाज पर हठ, दुराग्रह व पक्षपात के मिथ्यारोप का निराकरण करने के उपरांत प्रस्तुत नियम में पयुक्त 'सत्य' पद के अर्थ पर विचार किया जाता है। प्रस्तुत नियम में सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग करने का विधान है। ऐसे तभी सम्भव हो सकता है जब सत्यासत्य का बोध हो जाए। इसीलिए महर्षि लिखते हैं- 'पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जाएगा। पश्चात् सबको अपना-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा।'

लोकमत में जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही जानना सत्य और उसके विपरीत जानना असत्य कहलाता है। पुस्तक को पुस्तक और कलम को कलम जानना सत्य और विपरीत जानना असत्य होता है। सत्य की यह परिभाषा अपूर्ण है। अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब हम किसी वस्तु के वास्तविक रूप को जानते तो हैं, परंतु उसको वैसा कहते नहीं हैं। आत्मा और मन से जैसा जानते हैं, ठीक वैसा वाणी से नहीं कह पाते। यह सत्य नहीं वरन् असत्य है। किसी व्यक्ति ने एक घटना को पने नेत्रों से देखा है। वह उसका सही रूप जानता है और वैसा ही अन्य पुरुषों के सम्मुख मौखिक कहता है, परंतु साक्षी के समय वैसा लिखकर देने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो किसी पदार्थ के सही रूप को जानते हैं, ठीक वैसा ही कहते भी हैं और वैसा ही लिखकर दे भी देते हैं, परंतु आचरण में वैसा नहीं लाते। 'वेद सब तत्त्व विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' एक व्यक्ति इस नियम को इसी रूप में कहता भी है और लिखता भी है, परंतु इसे आचरण में नहीं लाता, इसलिए इस व्यक्ति को सत्यवादी नहीं कहा जा सकता, अतः सत्य की पूर्ण परिभाषा यह है- 'जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना

और मानना सत्य कहलाता है' सत्यभाषण जो कि तेरे आत्मा, मन, वाणी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत हैं, वह मिथ्याभाषण है। सत्य त्रिकालाबाधित होता है, वह तीनों काल में एक-सा ही रहता है। दो और दो का योग सदैव चार होता है, अतः दो और दो का योग चार कहना सत्य और अन्यथा कहना असत्य है।

सत्यासत्य की परिभाषा के बाद सत्य प्राप्ति के साधन का विवेचन आवश्यक है। राजनीति में आजकल प्रजातंत्र पद्धति में सत्यासत्य का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। १९९९ व्यक्तियों का एक विषय पर एकमत है, परंतु १,००० व्यक्तियों का मत उसके विपरीत है। इस स्थिति में १९९ व्यक्तियों में मत को कोई मूल्य नहीं भले ही विद्या में वे १,००० व्यक्तियों से अधिक योग्यता रखते हों। आर्यसमाज को यह पद्धति मान्य नहीं है। एक सहस्र मूर्खों के मुकाबले में एक विद्वान की सम्मति अधिक मान्य है, प्रयोगशाला में एक वैज्ञानिक प्रयोग करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरा वैज्ञानिक भी उसी निष्कर्ष पर पहुंचता है, किंतु इनके निष्कर्ष सर्वसाधारण की मान्यताओं से मेल नहीं खाते। क्या इस स्थिति में वैज्ञानिक इन लोगों के बहुमत के आधार पर अपने निष्कर्ष में परिवर्तन कर डालें? यदि ऐसा होने लगे तो सारा वैज्ञानिक अनुसंधान एक उपहास के अतिरिक्त और क्या रहेगा? सत्यासत्य का निश्चय करने के एक सरल व व्यावहारिक उपाय पर विचार करना यहां अभिप्रेत है। जैसा कि हम आरम्भ में लिख चुके हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए विचारों के आदान-प्रदान से वह अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करता है। समाज से वह कुछ सीखता है और उसे सिखाता है। इसके लिए शंका-समाधान, वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ बड़े उपयोगी उपाय सिद्ध होते हैं। आर्यसमाज का प्रारंभिक युग शास्त्रार्थ-युग था। इसी का परिणाम था कि सर्वसाधारण जनता वादी, प्रतिवादी के तर्क सुनकर अपने ज्ञान में वृद्धि करती थी और बिना अधिक परिश्रम किये ही सत्यासत्य का निर्णय कर लेती थी।



त्याग

श्रीमती शन्नो माटिया

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच अगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥।

ऋषि कहते हैं कि इस गतिमान, सदा बदलने वाले संसार का मालिक ईश्वर है। यह संसार उसी के द्वारा रचा हुआ है। इसलिए इसे सदा त्याग पूर्वक भोगो क्योंकि यह आपका नहीं है, आप इसके मालिक नहीं हो। आप को यह केवल प्रयोग करने के लिए ही दिया गया है। इसका त्याग पूर्वक भावना से प्रयोग करे। जो कुछ भी मिला है उसी में तृप्त रहो, मस्त रहो। इस संसार का भोग करो, साथ में यह समझकर कि ये सब मेरा नहीं है उस रचयिता प्रभु का है। जो इस संसार में निर्लेप, निःसंग व त्यागपूर्वक भाव से रहेगा वही सुखी रहेगा। सदा ही प्रसन्नचित्त रहेगा। कितनी बड़ी शिक्षा हमें मिली हुई है फिर भी हम इसे अपना समझ कर दुखी हों तो मूर्खता तो अपनी ही होगी।

इस तरह त्याग भाव से निर्मल हुए चित्त में ही सत्य का अनुभव होता है। जब यह समझ में आ जाये कि भोग ही प्रभु मिलन के योग में बाधक है और भोगों का त्याग ही योग है। त्याग भी ऊपरी बाहर से नहीं करना है, अंदर से प्रेरणा (इच्छा) भी होनी चाहिए कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। संसार की वस्तुएं हमारे लिए हैं, लेकिन हमारी नहीं हैं। जब यह समझ में आ जाता है, तो हम सदा प्रसन्नचित्त तथा चिंता क्लेश से दूर रहते हैं। त्याग भाव का अभ्यास करने वाला मनुष्य मोक्ष का तथा स्थायी सुख पाने का एक न एक दिन अधिकारी बन ही जाता है।

त्याग में एक और बड़े महत्व की बात है कि जब हम एक वस्तु का त्याग करते हैं तो दूसरी वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। जब हम अभिमान और तुच्छ इच्छाओं में त्याग भाव लाएंगे तो धर्म तथा मोक्ष को प्राप्त करेंगे। सांसारिक इच्छा पूरी होने से क्षणिक सुख तो मिलता है, पर एक इस इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा जाग पड़ती है। इन समाप्त होने वाली इच्छाओं का तांता सा लगा रहता है। इसमें लम्बी सुख व शांति नहीं रहती, असल शांति तो तुच्छ सांसारिक इच्छाओं के त्याग में ही है। हमें ऊपर उठना है, एक सुखी जीवन जीना है तो मौन तथा शांत होकर चिंतन करते रहना चाहिए। चिंतन और मनन का पक्का अभ्यास हो जाने से ही आप महात्मा कहलाने योग्य बन जाते हैं। ऐसा बनने के लिए हमें हर समय जागरूक, सचेत रहना होगा। अपने दोषों का त्याग करना है। उच्च विचार मन में लाकर सब दुःख, चिंताएं, भय को दूर से फटकार देना है। इस प्रकार जब मन साफ निर्मल हो जाता है तो वहां सत्य का अनुभव होता है ऐसा मन सदा परमात्मा में लीन रहने लग जाता है। तब जल्द ही मुक्ति और मोक्ष मिल जाता है।

बस इस त्याग भाव को त्याग के विचार को ठीक से समझ लिया तो तर गये इस भव सागर से। इस संसार से तारनहार स्वयं आ कर तार देते हैं। फिर कुछ प्रयत्न नहीं करता पड़ता है।

००

त्याग किसे कहते हैं? कुछ भी त्यागने से पहले हमें यह जानना अति आवश्यक है। यह कह देना तो बहुत आसान है कि आज से झूठ बोलना त्याग दिया या खान-पान तथा ऐसी ही कोई और दूसरी चीज त्याग दी। इस त्याग के पीछे भावना क्या है? किस विचार को लेकर छोड़ी है। अगर बदले में प्रभु से सौदा किया कुछ मांगा तो क्या त्याग किया? किसी भी अन्य लालच में छोड़ा कि इसके छोड़ने से अमुक लाभ होगा तो सब व्यर्थ का त्याग है।

दूसरी ओर संसार में जो लोग सब छोड़छाड़ कर सब चीजों को त्याग्य मानकर आलसी बनकर बैठ जाते हैं वे कभी जीवन मुक्ति के आनंद को नहीं भोग सकते हैं। हमें तो उच्च त्याग की भावना से प्रेरणा लेकर इस दुखों से भरे संसार से सुखों की ओर बढ़ना है। मोह में फंसे स्वयं को दुखी बनाने वालों के लिए तो सोच समझकर त्याग करना बहुत जरूरी है। अपने सुख दूसरों पर निर्भर नहीं रखने चाहिए। सदा इसी कोशिश में रहना चाहिए कि कैसे प्रसन्नचित्त, संतुष्ट रहकर अपने को चिंता क्लेश से दूर रखना है।

अपने ज्ञान की वृद्धि करके, अपने दोषों का जो समझ में आये उसका त्याग करना है। त्याग के बिना कहीं सम्मान नहीं मिलता है। और न ही मनुष्य भयभीत रहते हुए आनंद व मुक्ति पा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब हम यह समझ लेंगे कि संसार की सब वस्तुएं उस संसार बनाने वाले की है। तब उसकी वस्तु को अपना समझना एक चोरी की तरह है। जब वस्तु ही अपनी नहीं है तो उसका त्याग कैसा? हां! त्याग भाव से जो उसका इस्तेमाल करता है, वही असली जानी है। यह भी समझने की बात है कि जब हम कहते हैं कि सब उसी का है। इसका मतलब नहीं कि सब काम छोड़छाड़ कर, तथा हाथ पर हाथ रखकर बैठ जायें।

मनुष्य काम तो सब करे पर त्याग निष्काम भाव से करे। जो कुछ भी करे उसमें लिप्त न हो, अगर लिप्त हो गये तो सुख जो है वह दुख अनुभव करता है किसी में बदल जाते हैं। हमें यह जानकर कितनी प्रसन्नता होती है कि हम उन ऋषि-मुनियों के वंशज आर्य हैं, जिन्होंने वेद-उपनिषदें, तथा सांख्य-दर्शन आदि उच्च ग्रंथ रचे हैं। उन्हीं में से उपनिषदें सदैव मनन का विषय रही हैं। मेरा तो त्याग के विषय पर सोचते ही ईशावास्योपनिषद् पर ध्यान जाता है। इस उपनिषद् के पहले ही मंत्र में त्याग भाव का कितना सुंदर वर्णन किया है-

- मनुष्य का जन्म इसलिए होता है कि क्या सही है और क्या गलत। न की धर्म के नाम पर लड़ने के लिए।
- क्रोध का खाना विवेक होता है, इसलिए हमेशा इससे बचते रहना चाहिए। क्योंकि यदि आपका विवेक खत्म हो गया तो आपका सब कुछ खत्म हो गया।
- जो इंसान बाहर देखता है, वह सपने देखता है। जो इंसान अपने अंदर देखता है, वह इंसान जाग जाता है।
- कुछ ऐसे भी सपने सपने होते हैं, जो पूरे हो जाते हैं लेकिन हमें पता ही नहीं चलता कि वह हमारे सपने थे।

- Carl Jung

मनुष्य की सर्वोच्च उपाधि भगवान है

खुशहाल चन्द्र आर्य

आर्य समाजी जब राम और कृष्ण को भगवान कह कर संबोधित करता है तब मेरे पौराणिक भाई यह समझते हैं कि आर्य समाजी भी राम और कृष्ण को भगवान मानते हैं यानि ईश्वर मानते हैं पर ऐसी बात नहीं है, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि शंकराचार्य, दयानंद आदि जिनमें पहले हम शब्द का प्रयोग श्रद्धा व सम्मान के साथ करते हैं ये सब ईश्वर नहीं, महापुरुष थे। भगवान तो उनकी उपाधि या पदवी हैं जैसे महाशय, महात्मा, संत, ऋषि, महर्षि आदि होता है वैसे ही भगवान भी एक उपाधि है। परंतु भगवान, मनुष्य की सर्वोच्च व सर्वोपरि उपाधि है। जिसमें मानवता के अधिक से अधिक गुण विद्यमान हों, जो परम ऐश्वर्यशाली हो, जिसका पूरा जीवन निष्काम कर्म यानि अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि परोपकार के लिए बीता हो। जिसका खाना, पीना, सोना, बैठना आदि नित्य कर्म भी स्वार्थ की भावना से न होकर परमार्थ की भावना से हो। वह भोजन भी इसलिए करता है कि मैं अधिक से अधिक जीवित रहकर मानव की ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र की अधिक से अधिक सेवा कर सकूँ। जिसका प्रत्येक श्वास और प्रत्येक पल भी परोपकार में लगा हुआ हो।

जो मन, वचन, कर्म से कोई भी गलत काम अपने स्वार्थ के लिए न किया हो, जो बुद्धि, बल, ज्ञान, साहस, धैर्य, निष्पक्षता, त्याग, तपस्या व चरित्रता में भी बेजोड़ हो, ऐसे महापुरुष को भगवान कहा जाता है। यह पदवी किसी सरकार से या संस्था से नहीं मिलती, यह पदवी तो उसके प्रशंसक लोग ही श्रद्धा व प्रेम से देते हैं। मेरा विचार है कि अवतारवाद की अवधारणा और मूर्ति पूजा का प्रारम्भ भी इसी भगवान के प्रयोग से ही हुआ है। मनुष्य का यह स्वभाव होता है, उसके मन में जो विचार होते हैं, वे समय जाने पर स्वयं ही वास्तविकता में परिणित हो जाते हैं। जब लोगों ने राम और कृष्ण को भगवान के नाम से संबोधित करते देखा तो कुछ स्वार्थी और कम पढ़े-लिखे ब्राह्मणों ने सोचा कि राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं इसीलिए तो उन्हें भगवान कहते हैं। वैसे महापुरुष तो बहुत हुए हैं, केवल राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार मान लिया और उनकी काल्पनिक मूर्तियाँ बनाकर

पूजने व पूजवाने लगे और अपनी रोटी-रोजी का रास्ता बना लिया।

दूसरी बात यह भी है कि लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले, जब देश में बौद्धों और जैनियों का प्रभाव बढ़ गया और बढ़ता ही जा रहा था, इसके पीछे भी उनके द्वारा की जा रही मूर्ति पूजा भी एक कारण था। तब हिंदू पंडितों ने भी सोचा कि मूर्तिपूजा के कारण इनके अनुयायियों की संख्या बढ़ रही है तो हमें भी अपने भगवान राम और कृष्ण की मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिए ताकि हमारे हिंदू, बौद्ध और जैन न बने। इस समय वेद-ज्ञान प्रायः लुप्त हो चुका था। यज्ञों में पशु बलि होने लगी थी। ईश्वर की सही उपासना वैदिक संध्या, अष्टांग योग को लोग भूल चुके थे। सही ज्ञान के बिना निराकार ईश्वर की उपासना करनी बड़ी कठिन है। ऐसी स्थिति में लोगों ने मूर्ति पूजा से ही ईश्वर की उपासना करना सरल, समस्या और हिंदुओं में मूर्ति पूजा का प्रचलन हो गया। तत्कालीन लाभ तो यह हुआ कि हिंदुओं का बौद्ध और जैन बनना कम हो गया। परंतु भविष्य के लिए यह बड़ी दुखदायी सिद्ध हुई।

मानव-मात्र का कल्याण करने के लिए उन्नीसीवीं शताब्दी में देव दयानंद का प्रादुर्भाव हुआ उसने शिवरात्रि के दिन शिव की पिण्डी पर चूहों को उछलते कूदते और प्रसाद खाते देखा तब दयानंद जिसके जन्म का नाम मूल शंकर था, उसको मूर्ति की जड़ता का ज्ञान हो गया। इसके बाद उसने अपनी बहन और चाचा की मृत्यु देखी, तब उनको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे बाईस वर्ष की आयु में घर छोड़कर चले गये। उन्होंने पूरे देश का भ्रमण करके देश में फैले अज्ञान, अंधविश्वास और पाखंड को अपनी आंखों से देखा/पढ़े-पुजारियों को धर्म के नाम पर अधर्म करते देखा, तो वे इसका निदान ढूंढने के लिए विचलित हो उठे। ईश्वर की कृपा से किसी ने इनको व्याकरण के सूर्य गुरु बिरजानंद के पास भेज दिया, जिसके ऊपर से चक्षु तो बंद थे पर हृदय-पटल के चक्षु खुले थे। उस बिरजानंद ने वेदों की शिक्षा जो मानव को मोक्ष तक पहुंचाने की सही शिक्षा है, देकर जिज्ञासु दयानंद के

ज्ञान चक्षु खोल दिये। दयानंद ने सद्गुरु बिरजानंद के पास लगभग तीन साल विद्याध्ययन किया। इस बीच जब दयानंद ने वेदों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया, विद्या समाप्त होने के बाद जब दयानंद, गुरु दक्षिणा के रूप में कुछ लौंग लेकर गुरु के पास गये तो गुरु बिरजानंद दयानंद के गले में गला डालकर रोने लगे और कहा दयानंद। मैंने तुझे इस लौंग की दक्षिणा के लिए नहीं पढ़ाया था। तब दयानंद बोले कि गुरुजी आपकी क्या इच्छा है बता देवे? शिष्य अपना जीवन देकर भी आपकी इच्छा पूर्ण करेगा। तब गुरु बिरजानंद बोले, दयानंद! सब जगह अज्ञान, अंध विश्वास व पाखंड का बोलबाला है, वेदों को लोग भूल चुके हैं और पण्डे-पुजारी अपने स्वार्थ के लिए अधर्म को धर्म बतलाकर भोले-भाले सहारा बन। तू बेटा! देश में वेदों के ज्ञान का प्रचार कर और लोगों को वेद-पथ पर लाकर, लोगों को मोक्ष का उद्धार कर। मैं दक्षिणा में तेरा जीवन चाहता हूँ।

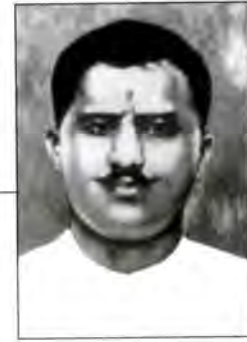
दयानंद ने कहा, गुरु जी ऐसा ही होगा और गुरु जी के चरण छूकर वहां से निकल अपने कार्य क्षेत्र में कूद पड़े। दयानंद बारह वर्षों तक देश के कोने-कोने में धूमे, वन और जंगलों को छाना, पहाड़ और घाटियों को लांघा, नदी और नालों को पार किया, भूखे-प्यासे रहकर अनेकों दुखों व कष्टों को सहते हुए दयानंद ने वेदों का प्रचार किया। मूर्ति पूजा, अवतारवाद, गंगा स्नान से पापों की निवृत्ति, तीर्थ दर्शन से मुक्ति, फलित ज्योतिष, भूत-प्रेत, गण्डे-डोरी, सगुन अपसगुन आदि अंधविश्वासों का खंडन, अपने उपदेशों भाषणों तथा शास्त्रार्थों द्वारा किया।

इन कामों में महर्षि ने विरोधियों द्वारा गाली खाई, ईंटें-पत्थर खाये, अपमान सहा। इन सब को सहते हुए इतना अधिक प्रयास करने के बाद देश में कुछ वेद-ज्ञान का प्रकाश हुआ और देश में कुछ नवजागृति आई। इसके बाद स्वामी जी ने सन् 1975 में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना, इस उद्देश्य से की कि मेरे चले जाने के बाद आर्य समाज, वेद प्रचार द्वारा मेरे अधूरे कामों को पूरा करती रहेगी। स्वामी जी 30 अक्टूबर 1883 दीपावली के दिन अजमेर में मोक्ष गामी हो गये।

○○

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल : संक्षिप्त जीवन परिचय

धर्मेन्द्र आर्य



क्रांतिकारी शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 संवत् 1954 विक्रमी (4 जून 1897 ई.) को शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री मुरलीधर व माता का नाम श्रीमती मूलमती देवी था। प्रारम्भ में आपके परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। आपके पिताजी ने एक दो साल म्यूनिसिपैलिटी की नौकरी की तत्पश्चात् कचहरी में स्टाम्प बेचने लगे। फिर रुपये का लेनदेन भी करने लगे। बिस्मिल जी का एक बड़ा भाई भी था जिसका बचपन में ही निधन हो गया। बिस्मिल जी के पश्चात् पांच बहनों और तीन भाइयों का भी जन्म हुआ। आर्यसमाज के विचारों का जीवन में परिवर्तन आपके घर के पास ही देवमंदिर था, आपको उसके पुजारी ने ब्रह्मचर्य पालन व पूजा पाठ का उपदेश दिया। आर्यसमाज के मुंशी इंद्रजीत जी ने आपको संध्या करने का उपदेश दिया तथा सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ पढ़ने को दिया। उसे पढ़कर आपका जीवन पूर्णतः बदल गया। सारी बुरी आदतें छूट गईं तथा जीवन सदाचार से आलोकित हो गया। आप कट्टर आर्यसमाजी बन गए।

इस संसार में अब तक अनगिनत आत्मकथाएं लिखी जा चुकी हैं तथा आगे भी लिखी जाती रहेंगी परंतु शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा जैसा गौरव शायद ही किसी को प्राप्त हो। इसका कारण निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है- '19 दिसम्बर 1927 ई. पौष कृष्ण 11 संवत् 1984 विक्रमी प्रातः साढ़े छह बजे इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी थी। इस कोठरी में सुयोग प्राप्त हो गया है कि अपनी कुछ अंतिम बातें लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूं।

संभव है मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाये।' काल कोठरी में बैठकर, फांसी लगने से मात्र कुछ घंटे पहले तक, उन्होंने आत्मकथा लिखकर एक इतिहास बना डाला तथा लिख भी डाला। धन्य हैं ऐसे वीर-मृत्यु के भय को जीत लेने वाले- ए भारत के नौजवान साथियों! क्या ये शहीद हमारे आदर्श नहीं होने चाहिए? आओ अब इस देश भक्त नौजवान के जीवनामृत का आचमन करें तथा उसके विचारों की कथा को श्रद्धाभाव से हृदयंगम करें।

जन्म तथा शिक्षा : क्रांतिकारी शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 संवत् 1954 विक्रमी (4 जून 1897 ई.) को शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री मुरलीधर व माता का नाम श्रीमती मूलमती देवी था। प्रारम्भ में आपके परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। आपके पिताजी ने एक दो साल म्यूनिसिपैलिटी की नौकरी की तत्पश्चात् कचहरी में स्टाम्प बेचने लगे। फिर रुपये का लेनदेन भी करने लगे। बिस्मिल जी का एक बड़ा भाई भी था जिसका बचपन में ही निधन हो गया। बिस्मिल जी के पश्चात् पांच बहनों और तीन भाइयों का भी जन्म हुआ। जब आप सात वर्ष के थे तब आपके पिताजी ने उन्हें हिंदी अक्षरों का बोध कराया तथा एक मौलवी साहब के मकतब में उर्दू पढ़ने भेज दिया। बचपन में आप बहुत शरारती थे। पांचवीं कक्षा में पढ़ते समय आपको घर से पैसे चुराने, सिगरेट व भांग पीने तथा उपन्यास पढ़ने की लत लग गई थी। इसी कारण आप कई बार मिडिल की परीक्षा में फेल हो गए।

आर्यसमाज के विचारों का जीवन में परिवर्तन : आपके घर के पास ही देवमंदिर था, आपको उसके पुजारी ने ब्रह्मचर्य पालन व पूजा

पाठ का उपदेश दिया। आर्यसमाज के मुंशी इंद्रजीत जी ने आपको संध्या करने का उपदेश दिया तथा सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ पढ़ने को दिया। उसे पढ़कर आपका जीवन पूर्णतः बदल गया। सारी बुरी आदतें छूट गईं तथा जीवन सदाचार से आलोकित हो गया। आप कट्टर आर्यसमाजी बन गए। आर्यसमाजी विद्वान स्वामी सोमदेव को आप अपना गुरु मानते थे। उन्होंने ही आपको राजनैतिक उपदेश दिया तथा स्वदेश हित में क्रांतिकारी बनने की प्रेरणा दी। देवतास्वरूप भाई परमानंद की फांसी की सजा सुनकर आपने अंग्रेजी राज्य को ध्वस्त करने की प्रतिज्ञा की।

काकोरी कांड व फांसी : आपने अपनी आत्मकथा में क्रांतिकारी दल बनाने, नौजवानों को संगठित करने, क्रांतिकारी कार्यों व अस्त्र-शस्त्रों के लिए पैसा एकत्र करने संबंधी विवरण विस्तारपूर्वक दिए हैं। दल की आर्थिक दशा सुधारने हेतु आपके नेतृत्व में क्रांतिकारी नौजवानों ने 9 अगस्त 1925 को काकोरी स्टेशन के पास रेलगाड़ी में से सरकारी खजाना लूट लिया। उसी वर्ष एक साथी को गद्दारी के कारण 25 दिसम्बर को तथा आपको अन्य साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया। 17 दिसम्बर 1927 को श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी को गोंडा जेल में तथा श्री बिस्मिल को गोरखपुर जेल में, श्री अशफाक को फैजाबाद में व श्री रोशन सिंह को इलाहाबाद जिला जेल में (19 दिसम्बर को) फांसी पर लटका दिया गया। वे हंसते-गाते फांसी के तख्ते पर चढ़े। उन्होंने अपना जवानी की उमंगों, सभी ऐश्वर्यों का इसलिए त्याग कर दिया ताकि देश आजाद हो और आने वाली पीढ़ी सुखपूर्वक, जीवन का आनंद ले सके। अनन्त आकाश में एक वाक्य आज भी गूंज रहा है- शहीदों की चिताओं पर, लगाओगे किस दिन तुम मेले, तुम्हारे मेलों की खातिर, वो चढ़े फांसी पर अकेले।।

शहीद बिस्मिल की वसीयत : उन्होंने मौत के साये में अपनी आत्मकथा लिखी तथा फांसी के फंदे पर झूल गए ताकि उनके देशवासी सुख के हिंडोले में झूल सकें। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण जवानी अंग्रेजी साम्राज्य से टक्कर लेते हुए आहुत कर दी ताकि हम स्वराज्य का सुख भोग सकें। उन्होंने अनगिनत दिन भूखे-प्यासे रहकर काटे ताकि उनके देशवासी कभी भूखे न

सोएं। तो क्या यह हमारा परम कर्तव्य नहीं कि भावी पीढ़ी उनकी आत्मकथा पढ़े- पुस्तकालयों में रखें- साधियों में उनके विचारों का प्रचार करें? शहीद बिस्मिल की आत्मकथा हमारे लिए अनमोल वसीयत है। आओ इसे पढ़ें, अपने दिल में झांके कि उन वीरों की अमर कहानी, हमें याद भी है या नहीं।

कन्या भ्रूणहत्या के खिलाफ आवाज : शहीद पं. रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है- 'मेरे बाद पांच बहनों का जन्म हुआ। दादा जी ने कुल की कुप्रथा के अनुसार कन्याओं को मारने की कोशिश की। परंतु मेरी माता जी ने इन कन्याओं के प्राणों की रक्षा की, उन्हें अच्छी शिक्षा दी तथा धूमधाम से उनकी शादी की। धन्य है ऐसी माता जिसने कन्याओं के प्राण बचाए तथा धन्य है पं. रामप्रसाद जिन्होंने भारतके मां के सम्मान की रक्षा की। आज हम आजाद हैं- कभी कभी लगता है कि आजादी का मतलब हमने सिर्फ गलत कार्य करने की आजादी मान लिया है। कितने शर्म की बात है कि आधुनिक, शिक्षित समाज में कन्याओं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए। कितने ही डाक्टर, स्वार्थवश कसाई तथा नर्सिंग होम (कन्याओं के) कल्लगाह बन गए हैं। आओ पं. रामप्रसाद बिस्मिल जी की माता से प्रेरणा लें तथा कन्याओं के प्राण बचाएं, अपना भविष्य एवं मानव जाति का अस्तित्व बचायें।

खूब गाय का दूध पिया : बिस्मिल जी के दादा जी को गाय पालने का बड़ा शौक था। वे बच्चों को गाय का दूध पिलाया करते थे। बिस्मिल जी तो गाय के घन में मुंह लगाकर दूध पी जाया करते थे। आज तो इस देश में सूर्य उगते ही हजारों गायों की गर्दन पर कुल्हाड़ा चल जाता है। जिन गायों की वजह से भारत में 'घी दूध की नदियां' बहती थी, आजाद भारत में उन गायों के खून की नदियां बह रही हैं, महाशोक है। जिनका दूध पीकर इस पावन धरती पर राम, कृष्ण, हनुमान, भोष्प, महर्षि दयानंद, बुद्ध, महावीर, गुरु गोविंद सिंह जैसे महापुरुष हुए, आज उस धरती पर गुरुकुल व गौशालाओं की वजह बूचड़खाने व कल्लगाह खोले जा रहे हैं- ये कैसी आजादी है? आओ गौशाला खोलें, गौमाता की रक्षा करें। याद रहे गाय बचेगी तो संस्कृति बचेगी, देश बचेगा।

और खूब मार खाई : शहीद रामप्रसाद जी खूब दूध पीते थे तथा शरारत भी बहुत करते थे। उनके पिता जी ने उनको कई बार पीटा। परंतु वे आत्मकथा में लिखते हैं कि शायद इसी मार पिटाई से उनका शरीर मजबूत और सहनशील बन

गया। बाद में पुलिस के अत्याचार भी उनकी जुबान न खुलवा सके। आजकल अखबारों में प्रायः ऐसी खबरें छपती रहती हैं कि अमुक नौ-जवान ने पिता द्वारा डांटने, धमकाने या कोई फरमाईश पूरी न करने के कारण फांसी लगा ली, घर छोड़ दिया आदि। ये वर्तमान शिक्षा पद्धति का भयंकर दोष है कि वह विद्यार्थियों में सहनशीलता, आज्ञापालन, अनुशासन व सादगी जैसे उच्च विचारों का समावेश करने में सर्वथा असफल रही है। नौजवान भाई-बहनों, याद रखो मनुष्य जीवन अनमोल है। आत्महत्या का विचार भी एक काय-रता है, एक पाप है। कष्ट आते हैं तो चले भी जाते हैं। आइए इस मनुष्य जीवन को मानव सेवा व देश धर्म की सेवा में लगाएं। देश को हमारी जरूरत है और हमको जरूरत है शहीदों के जीवन व साहित्य से प्रेरणा लेने की।

'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ाते जीवन का तख्ता ही पलट गया : पं. रामप्रसाद जी को बचपन में घर से पैसे चुराने, सिरेट पीने, भांग पीने तथा उपन्यास पढ़ने जैसे कई बुरी आदतें लग गईं। आप कई बार फेल भी हुए। आपके घर के पास ही मंदिर था वहां पर आर्यसमाज के श्री मुंशी इंद्रजीत जी ने उन्हें संध्या करने, व्यायाम करने व ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश दिया तथा महर्षि दयानंद का क्रांतिकारी ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' दिया जिसे पढ़कर उनका जीवन ही बदल गया। सारे दुर्व्यसन छूट गये। वे लिखते हैं- सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैंने उसमें उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर लिया। मैं तख्त पर एक कम्बल बिछाकर सोता और प्रातःकाल 4 बजे ही शैय्या त्याग देता। स्नान ध्यान से निवृत्त हो व्यायाम करता। रात्रि को केवल दूध पीता। नमक खाना भी छोड़ दिया। केवल उबले साग यादाल से एक समय भोजन करता। मिर्च खाई तो छूता भी न था। शरीर के सब दोष दूर हो गए और स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते। उपरोक्त पंक्तियां हर विद्यार्थी हर नौजवान के लिए पथ प्रदर्शक हैं। एक अमूल्य धरोहर है। अगर विद्यार्थी इस दिनचर्या को अपना ले तो निश्चय ही उनका तन और मन दोनों निखर जाएं।

मंदिर बन सकते हैं क्रांति मंदिर : महाभारत युद्ध के पश्चात् हमारे देश का तीव्र गति से पतन शुरू हुआ। धर्म के नाम पर वेद विरुद्ध परम्पराएं (जैसे मूर्ति पूजा, जन्मगत जात-पात, अवतारवाद, भाग्यवाद, नाना मतपंथ व सम्प्रदायवाद आदि) चल पड़ीं। आज देश में

कितने ही मंदिर बने हुए हैं तथा बनते चले जा रहे हैं। कितना ही पैसा लगाकर उनमें तरह-तरह की मूर्तियों की स्थापना की जाती है। उनसे धन सम्पत्ति व रक्षा का वरदान मांगा जाता है। परंतु विद्यार्थी व नौजवान भाई-बहनों क्या आपको इतिहास या वर्तमान में एक भी ऐसा उदाहरण मिला जब किसी मूर्ति ने किसी आक्रमणकारी, विदेशी लुटेरों यथा गौरी, गजनवी, तैमूरलंग, नादिरशाह या अंग्रेजों या चीनी व पाकिस्तानी युद्धों अथवा कारगिल, अक्षरधाम आदि पर हुए हमलों से एक बार भी हमारी रक्षा की हो? याद रखें-

कण कण में व्यापक ईश्वर करे इमदाद सभी की, पत्थर की मूर्त नहीं सुनती फरियाद किसी की।

अगर हमें देशहित व जातिहित का जरा भी ख्या है तो मूर्तियों पर पैसा बरबाद करने की जगह मंदिरों में पुस्तकालय, व्यायामशाला, यज्ञशाला, गौशाला, वाचनालय, हुनरशाला खोलनी चाहिए ताकि ये मंदिर सही अर्थों में क्रांति मंदिर बन सकें। तथा शहीदों का सपना पूरा हो सके।

शहीद बिस्मिल जी ने अपनी आत्मकथा 'निज जीवन की एक छटा' में 'ब्रह्मचर्य व्रत का पालन' शीर्षक से एक अध्याय लिखा है। इसकी एक एक पंक्ति विद्यार्थियों के लिए अमूल्य धरोहर है। कैसे-कैसे मोती पिरोकर बिस्मिल जी ने ऐसी सुंदर माला बना दी है जिस-को नित्य फेरने से नौजवानों का कायाकल्प हो सकता है। आओ हम भी इस जादुई माला के एक-एक मनके फेरते चले।

संतान रूपी अमूल्य धन नौकर-नौकरानियों को न सौंप : वर्तमान समय में देश की ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जितने भी धनी लोग हैं वे अपनी संतान को नौकर-नौकरानियों को सौंप देते हैं। जैसा मर्जी बच्चे को बनावें। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी व्यवसाय तथा नौकरी में फंसे रहने के कारण संतान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते। ये नौकर तो बच्चों को नष्ट करते ही हैं और यदि बच भी गए तो मोहल्ले की गंदगी से बचना बड़ा कठिन है। बाकी रहे सहे स्कूल में पहुंचकर पारंगत हो जाते हैं। कालेज पहुंचते-पहुंचते आजकल के नवयुवकों के सोलह संस्कार जाते हैं। महर्षि दयानंद के क्रांतिकारी ग्रंथ सत्यार्थ में लिखा है कि बच्चे की प्रथम गुरु माता, दूसरा गुरु पिता तथा तीसरा गुरु शिक्षा देने वाला आचार्य होता है। जब ये तीनों गुरु उत्तम हों, तभी महापुरुषों का निर्माण होता है। शहीद रामप्रसाद जी की उपरोक्त पंक्तियों का आशय भी शायद यही है।



महर्षि दयानंद : अंतर्दामी शिक्षा को पहचानो

ओम प्रकाश आर्य, राजस्थान

परमात्मा सर्वान्तर्यामी है। वेद में त्रैतवाद का उल्लेख है। त्रैतवाद से तात्पर्य है- ईश्वर, जीव और प्रकृति का अलग-अलग अस्तित्व है। इन तीनों के सहारे सृष्टि का क्रम चल रहा है। ऋग्वेद में स्पष्ट संकेत हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलस्वद्वत्यनश्त्रन्यो अभिचाकशीति।।

अर्थात् आत्मा और परमात्मा रूपी पक्षी प्रकृति रूपी वृक्ष पर बैठे हुए हैं। आत्मा रूपी पक्षी उस वृक्ष के फल का स्वाद ले रहा है और परमात्मा रूपी पक्षी उसे देख रहा है। यह केवल साक्षीमात्र है।

इस मंत्र से यह स्पष्ट है कि ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों की सत्ता अलग-अलग है। आत्मा, परमात्मा का अंश नहीं, अपितु अनादि और शाश्वत सत्ता है। आत्मा, परमात्मा दोनों मित्र हैं। आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है, परंतु उसका फल देना परमात्मा के अधीन है। यदि आत्मा अपने मित्र परमात्मा की शिक्षा को मान लेता है तो उसे आनंद की प्राप्ति होती है, इसके विपरीत यदि वह अपने मित्र का कहना नहीं मानता है तो उसे अशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

वेद उसकी शिक्षा का महानतम भंडार है। शरीर प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों से बना है जो स्थूल है। इस शरीर के अंदर सूक्ष्म शरीर है जिसे सांख्य दर्शन में लिंग देह कहा गया है- 'सप्तदशैकं लिंगम्' अर्थात् सत्रह का एक लिंग देह होता है। वे तत्व हैं- पंचतन्त्रमात्रा, दस इंद्रियां, मन व बुद्धि, आत्मा के साथ लिंग देह लगा रहता है। स्थूल शरीर तो द्रष्टव्य है, किंतु लिंगदेह सूक्ष्म है। इसी सूक्ष्म शरीर में शुभाशुभ कर्मों के संस्कार संचित रहते हैं जो जन्म-जन्मान्तर तक चलते हैं। आत्मा उसे ढोता है। जिस चीज को हम एक बार देख लेते हैं वह हमारी सूक्ष्म आंखों के सामने बार-बार आती है। इस प्रकार न देखते हुए भी हम सूक्ष्म आंखों द्वारा देखते हैं, न चलते हुए भी हम सूक्ष्म पैरों द्वारा चलते हैं, न बोलते हुए भी हम सूक्ष्म वाणी द्वारा बोलते हैं, न सुनते हुए भी हम सूक्ष्म कानों द्वारा सुनते हैं। यह सब सूक्ष्म शरीर का कार्य व्यापार है।

परमात्मा जो अति सूक्ष्म है अपनी सूक्ष्म वाणी द्वारा हमें शिक्षा देता है, पर उसकी आवाज इतनी सूक्ष्म होती है कि हम उसे चिंतन द्वारा ही पहचान सकते हैं। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति जब कोई गलत कार्य करने लगता है तो परमात्मा उसको वैसा करने से मना करता है, किंतु स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार आदि के द्वारा जब वह उसकी आवाज को दबा देता है तब अनुचित कार्य कर डालता है जिसका दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ता है।

जो व्यक्ति परमात्मा की शिक्षा को जानता है उसकी आवाज को सुनता है, वह कभी गलत कार्य नहीं करता। आपने कड़ियों के मुख से सुना होगा कि वे गलत कार्य करने जा रहे थे, किंतु उनके हाथ रुक गए। उस गलत कार्य को करने से रोकने वाली परमात्मा की शिक्षा है। जो व्यक्ति परमात्मा की शिक्षा को दबा देता है या उसकी आवाज को नहीं सुनता है वह गलत कार्य करने में संकोच नहीं करता। उसके लिए परमात्मा की शिक्षा मूक बन जाती है।

आपने अनेक व्यक्तियों के मुख से सुना होगा कि फलां काम करने के लिए उनका दिल गंवारा नहीं कर रहा है। यह गंवारा न कराने वाला कौन है? परमात्मा की शिक्षा है। परमात्मा कभी नहीं चाहता कि मनुष्य कोई गलत काम करे। उसकी शिक्षा को न सुनने वाले आत्मइन्ता है।

परमात्मा कदम-कदम पर शिक्षा देता है और कण-कण में उसकी शिक्षा समाहित है, ज्ञानपूर्वक उसे देखने की आवश्यकता है। सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, फूल, फल वायु, वनस्पतियों आदि एक-एक चीज उस परमात्मा की शिक्षा को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे हैं। हमें उस शिक्षा पर विचार करना चाहिए। कठोपनिषद् कहता है-

आत्मनं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

अर्थात् 'आत्मा रथी है, अर्थात् रथ का मालिक है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है।'

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्तेव्याहुर्मनीषिणः।।

'इन्द्रियां घोड़े हैं, इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं जिन पर इन्द्रिय रूपी घोड़े दौड़ते हैं। मनीषी लोग कहते हैं कि जब आत्मा, इन्द्रियां तथा मन मिलकर कोई काम करते हैं तब मनुष्य 'भोक्ता' कहलाता है।

यदि रथ में बैठा हुआ सवार सारथी से यह कह दे कि हम तो रथ को इसी रास्ते से ले चलेंगे, तुम्हें चलना हो तो चलो, अन्यथा उतर जाओ, हमारी जहां इच्छा होगी, रथ वहां-वहां ले जाऊंगा तो उस सवार का क्या हाल होगा? या तो वह गिर पड़ेगा या तो गलत राह पर चला जाएगा, क्योंकि उसकी आवाज को सारथी ने नहीं सुना। ठीक यही हाल है हमारे शरीर रूपी रथ का और उसके लिए परमात्मा की शिक्षा का।

परमात्मा की शिक्षा को सुनो और शरीर रूपी रथ को श्रेष्ठ मार्ग पर ले जाओ, अन्यथा दुख भोगना पड़ेगा। स्वामी दयानंद के शब्दों में- 'जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त करता है और जो विपरीत वर्तता है वह बंधजन्य दुख भोगता है। जो मनुष्य परमात्मा की शिक्षा को सुनता है, उसे आनंद, उत्साह और निर्भयता और जो नहीं सुनता उसे भय, शंका और लज्जा होती है। स्वामी दयानंद के शब्दों में- 'जब इन्द्रियां अर्थों में मन इन्द्रियों और आत्मा के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे या बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनंद, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अंतर्दामी परमात्मा की शिक्षा है।'

इस प्रकार समस्त सत्कर्म परमात्मा की शिक्षा के अनुकूल और समस्त दुष्कर्म प्रतिकूल हैं। सत्कर्म से आनंद और दुष्कर्म से दुख की प्राप्ति होती है। अतः हमें उस अंतर्दामी परमात्मा की शिक्षा पर विचार करके सदनुकूल आचरण करना चाहिए।

००

आर्यो

संजय सत्यार्थी

आप नहीं कर सकते जब तक अपना स्वयं सुधार आर्यों।
कहो करोगे कैसे जग में वैदिक धर्म प्रचार आर्यों।
वे जो लोग हैं खड़े चतुर्दिक बरबस लोहा मान रहे हैं।
धर्मध्वजा का सबल सिपाही आर्यसमाज को जान रहे हैं॥
कथनी करनी साथ निभाओ, तब होगा उद्धार आर्यों।
कहो करोगे कैसे जग में वैदिक धर्म प्रचार आर्यों॥

सबल संगठन के प्रहरी हो, है वेद तुम्हारे हाथ में।
'सत्यमेव जयते' का पावन मंत्र तुम्हारे साथ में॥
आपस की खीचातानी को त्यागो बांटो प्यार आर्यों।
कहो करोगे कैसे जग में वैदिक धर्म प्रचार आर्यों॥

हर सत्संग में करते हो तुम संगठन सूक्त का पाठ निरंतर।
साथ चले ना केवल बोलें मधुर वेद मंत्रों को सस्वर॥
एक बनो और नेक बनो सब तजकर कुटिल विचार आर्यों।
कहो करोगे कैसे जग में वैदिक धर्म प्रचार आर्यों॥

नफरत की दीवार तोड़कर एक मंच से काम करें।
ऊँच नीच का भेद भुलाकर आर्य राष्ट्र निर्माण करें।
छत्तीस का हो खत्म आँकड़ा भाव तिरसट धार आर्यों।
संगतिकरण से स्वार्थ मिटे, हे आर्यों! कर लो शक्ति संघय॥

जागो स्वयं जगाओ सबको आह्वान करता है 'संजय'।
पाखण्डों की देख विषमता, कमी न मानो हार आर्यों॥
कहो करोगे कैसे जग में वैदिक धर्म प्रचार आर्यों॥



ऐसे सपनों देखो, जो हमेशा जिन्दा रहे।
उन सपनों को देखो, जिनका कोई मतलब हो।
जैसा आप सपने देखेंगे, वैसे ही आपका चरित्र होगा।

Ralph Waldo Emerson
राल्फ वाल्डो एमर्स

युवको! रुको!

(नई पीढ़ी के युवकों के लिए संदेश)

- प्रो. डॉ. रामदेव सिंह 'देव'

युवको! रुको, बिना सोचे-समझे
भोगवाद की ओर मत झुको
यह योग भूमि है
योगेश्वर का देश है।

युक्ताहार विहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु... आदि
यहां सर्वशास्त्र सार श्रीमद् भगवत् गीता का उपदेश है-
अपर च तुम्हारी आर्य परम्परा है-
तुम सब अमृत आर्य पुत्र हो।

मानवीय आदर्शों के
सर्वमान्य मंगलसूत्र हो।
तुम राम हो, कृष्ण हो
कपिल हो कणाद हो,
घर-घर की शान हो, मानवता का बरदान हो?

नवयुग निर्माण हेतु अग्रिम अभियान हो
तुम्हारी आचार संहिता
निखिल लोकादर्शों का शाश्वत आधार है
तुम पर आस लगाये आज सारा संसार है
तुम्हारा वैदिक वाङ्मय निःशेष ज्ञान-विज्ञान का
अप्रतिम अक्षय कोष है-

जहां सुख है, शांति है, संतोष है
अतएव तुम भूलकर भी भोगवादी
चार्वकी चिन्तनों के कुचक्र में आकर
सुर दुर्लभ तन पाकर
उपयोगितावादी पाश्चात्य
दुश्चिंतन के दल-दल में फँसकर

खाओ, पियो, मौज उड़ाओ
जड़वादी दर्शन पर आधारित
कामिनी कंचन के पीछे
कामान्ध होकर भस्मासुर भोगवाद की ओर
कदापि न झुको, युवको! रुको!!

महर्षि दयानंद सरस्वती के क्रांतिकारी विचारों की मौलिक झलक

यु

गों के उपरांत अठारवीं शताब्दी में इस धरती पर देव दयानंद जैसे महान सुधारक ने जन्म लिया, जिसने सभी समाज सुधारकों को पीछे छोड़कर एक नयी वैचारिक क्रांति का शंखनाद किया। उन्होंने अदभुत साहस दिखाकर धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक कुरीतियों पर जोरदार प्रहार किया। ऐसे कठिनतम कार्य को तो एक महामानव ही कर सकता था।

भारत के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना पायी जाती है कि उन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन को पलट दिया। ऋषि दयानंद आदित्य ब्रह्मचारी थे। स्वामी शंकराचार्य ब्रह्मचारी थे। स्वामी विवेकानंद भी ब्रह्मचारी थे। इन महापुरुषों के विचारों ने भारत के कोने-कोने को आच्छादित कर दिया था। इन्होंने अपने-अपने समय में महान कार्य किया और मनुष्यों में एकता के द्वारा एक दूसरे से कड़ी जोड़ने का प्रयास किया। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में भी इस देश का कर्णधार वही हो सकेगा, जो ब्रह्मचारी रहकर देश की चुनौतियों को स्वीकार कर उनको चुनौती देगा।

देखने में आया कि महर्षि दयानंद ने भारत के नर-नारियों में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार किया। यह अपने आप में सर्वोच्च महान कार्य था। आइए उन पर विचार करते हैं।

1. धार्मिक क्षेत्र में रूढ़िवाद पर प्रहार : भारत का धर्म वेदों से बंधा हुआ था और नर-नारी में वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा थी और हिंदू धर्म की आधारशिला वेद थे। दयानंद से पूर्व वेदों के विद्वानों ने उनके अर्थ का अनर्थ किया हुआ था, उनमें सायणाचार्य, महिधर, मैक्समूलर, जैकोबी आदि ने वेद मंत्रों का इतिहास परक अर्थ करके सम्पूर्ण समाज को गहरे अंधेरे कुएं में डाल दिया था। उन्होंने प्रचलित किया कि वेदों में पशुबलि है, वेदों में नारी को पढ़ने का अधिकार नहीं है। वेदों में जाति प्रथा मूर्ति पूजा, भूत-प्रेत, जादू-टोना है। वेदों में काल्पनिक देवी-देवता हैं। वेदों में छुआछूत है। इस प्रकार वेदों के अर्थों को अपने स्वार्थ के लिए बदल दिया गया था। भारत की भोली जनता इसका शिकार बन गयी थी।

महर्षि दयानंद ने सर्वप्रथम वेदों के उन मंत्रों

पं. उममेद सिंह विशारद

के शुद्ध अर्थ करके प्रमाणित किया कि महिलाओं व शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार है।

वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है, जाति व्यवस्था नहीं है, पशुबलि नहीं है, वेदों के शब्दों का सही अर्थ करके जनता के सामने रखा और सदियों से चली आ रही परम्पराओं को धराशायी कर दिया। महर्षि दयानंद ने धर्म के सत्य अर्थ को सामने रखकर दिशा ही बदल दी। सत्य, धर्म का निरंतर प्रचार करते रहने के लिए आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने सम्पूर्ण विश्व में अंधविश्वास की चूलें हिलाकर रख दी।

2. सामाजिक क्षेत्र में रूढ़िवाद पर प्रहार : महर्षि दयानंद का सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण था। यही कारण था कि सिर्फ भूत के साथ चिपटे रहने वाले रूढ़िवाद का सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने बहिष्कार किया। वे सामाजिक कुरीतियों के पक्षधर नहीं थे। उनके समय में हिंदू समाज नवीनता से डरता था। वह बहुत कठिन दिन थे, सदियों पुरानी सामाजिक कुप्रथाओं को मिटाना आसान कार्य नहीं था, किंतु देव दयानंद सत्य की राह से जरा भी नहीं डिगे। एक नयी सामाजिक क्रांति को जन्म दे ही दिया।

ऋषि दयानंद के पुरुषार्थ का परिणाम था कि समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। स्त्रियों के प्रति जहां 'स्त्री शूद्रों नाधीयताम्' का राग अलापा जाता था, वहीं कन्याओं के पढ़ने के लिए पाठशालाएं खोली जाने लगी। शूद्रों पर शोषण संबंधी विचार बदलने लगे। यज्ञोपवीत पहनने का सबको अधिकार मिल गया। जातिवाद, भेदभाव, छुआछूत, मृत्युभोज, काल्पनिक देवी-देवता और अनेक सामाजिक कुरीतियां बदलने लगी। ऋषि दयानंद ने समाज कल्याण के लिए जो रूपरेखा बना दी, उसी को लेकर 20वीं शताब्दी के सामाजिक तथा राजनैतिक नेताओं ने कार्य किया। महात्मा गांधी आदि विचारकों ने अधिकांश उन्हीं सुधारों का अनुसरण किया।

3. राजनैतिक क्षेत्र में प्रहार : भारत का जनमानस यह विश्वास करता था कि देश में जिसका राज्य चला आ रहा हो, उसमें कितनी भी

स्वामी दयानंद के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रयोग और प्रचार हो। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।

जब कोई आर्य एकाकी हो तो उसे स्वाध्याय करना चाहिए। दो आर्य हों तो उन्हें परस्पर प्रश्नोत्तर और संवाद करना उचित है। यदि दो से अधिक आर्य एकत्रित हों तो उनको चाहिए कि परस्पर सत्संग करें। किसी धर्मग्रंथ का पाठ सुनें सुनावें।

परोक्षपार और परहित करते समय अपना मान-अपमान और पराई निंदा का त्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता।

विकृतियां क्यों न हों वही ठीक है। महर्षि दयानंद ने उस पर भी प्रहार किया। उन्होंने कहा जब तक राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला विद्वान धार्मिक व सदाचारी व सादगी वाला न हो, तब तक वह कुशल शासन नहीं दे सकता है। उन्होंने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के 8वें सम्मुलास में लिखा- अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद तथा परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की ही क्या कहनी, जो कुछ भी है सो विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा है। दुर्दिन जब आता है तब देश को अनेक दुख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना ही करे, परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। उन्होंने देश की उन्नति के विषय में कहा- धर्मशक्ति वेदानुकूल+राजशक्ति वेदानुकूल+ज्ञानशक्ति वेदानुकूल+और धनशक्ति वेदानुकूल सत्य के आधार पर होनी चाहिए।

इस प्रकार महर्षि दयानंद जो स्वतंत्र भारत में स्वस्थ, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन करके भारत को पुनः जगत गुरु, धर्मगुरु, सोने की चिड़िया बनाना चाहते थे, जिसका प्रभाव वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर शनैः-शनैः पड़ने लगा है। ऐसे महान देव पुरुष को हम गर्व से भारत का पितामह कह सकते हैं।

००



ऋषि दयानन्द सरस्वती अभिनंदन एवं पुण्यस्मरण

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी 'पूर्व भारतीय उच्चायुक्त'

शुद्ध प्रबुद्ध ज्योति से जगमग
जो ऋषि अलख जगाने आया
मटके भूले भारत को जो
मजिल तक ले जाने आया ॥

उस निष्ठा को नीव बनाकर
ऋषि ने हमको नई दृष्टि दी
वेदों के वैभव से निर्मित
स्वामिमान की नई सृष्टि की ॥

उस तेजस्वी ऋषि को पाकर
धन्य हो गई भारत माता!
हर भारतवासी का मस्तक
गौरव से ऊंचा हो जाता ॥

जिसने वैदिक दिव्य दृष्टि से
भारत में की प्राण प्रतिष्ठा
वेदों के मंत्रों में जिसकी
अविचल, अटल, अलौकिक निष्ठा ॥

वेदसुधा से जिसने सींचा
आर्य जगत का नंदन-कानन
जिसके उद्बोधन से जागा
भारत का अपना घर-आंगन ॥

वे सरस्वती के वरद पुत्र
ऋषि दयानन्द करुणावतार
जिसने वेदों की कुंजी से
खोले नवयुग के नए द्वार ॥

ईर्ष्या और वैर की अग्नि बुझाओ!

(लघु कथा)

बहुत समय पहले की बात है कि मथुरा में राजाबाबू नाम के एक सेठ रहते थे। धर्म की ओर उनकी बहुत रुचि थी। कितने ही मंदिर उन्होंने बनवाये, एक पाठशाला बनवाई, जिसमें विद्वान संन्यासी पढ़ाते थे। राजाबाबू का एक और सेठ लक्ष्मीकांत से झगड़ा था जो जमीन के संबंध में था। झगड़ा बढ़ते-बढ़ते न्यायालय में पहुंचा। अभियोग चलने लगा। कई वर्ष अभियोग चलता रहा।

राजाबाबू अभियोगों को भी लड़ते थे और अपने घर का काम भी करते थे। उनकी बनवाई हुई पाठशाला में प्रत्येक रात्रि को कथा होती थी। राजाबाबू सर्वदा उसे सुनने जाते। कथा सुनते-सुनते उन्हें संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने गुरु से पूछकर वे पाठशाला में रहने लगे। एक कमरे में पड़े रहते। खाना घर से आ जाता, वे खा लेते और जाप करते रहते। बहुत समय बीच गया। एक दिन उन्होंने अपने गुरु से कहा- 'यदि आपकी कृपा हो तो संन्यास ले लूं।'

गुरु ने कहा- 'नहीं राजाबाबू! अभी तुम संन्यास के योग्य नहीं हुए। राजाबाबू ने सोचा- मैं घर पर नहीं जाता, परंतु मेरी सेटी तो घर से आती है। अब घर से सेटी नहीं मगऊंगा। यही एक नौकर रख लूंगा। यही बना दिया करेगा। ऐसा ही किया उन्होंने और फिर एक दिन यह सोचकर कि अब तो घर से कोई संबंध नहीं, वे फिर बोले- 'गुरु महाराज! अब यदि संन्यास ले लूं तो?' गुरु ने कहा- 'नहीं, अभी समय नहीं आया।' राजाबाबू ने

सोचा- मैं अभी नौकर से सेटी बनवाता हूं। इसीलिए गुरुजी नहीं मानते। यह भी छोड़ दूंगा। मिथा मांगकर खाऊंगा और आराम की सब वस्तुएं भी छोड़ दूंगा। तब ऐसा ही किया उसने। सुबह के समय नगर में जाता मिथा मांग करके लाता और सारा दिन आत्मचिंतन में मस्त होकर बैठा रहता। पर्याप्त समय बीच गया। फिर प्रार्थना की गुरु जी, मुझे संन्यास दे दीजिए। गुरु ने सोचकर कहा- 'अभी नहीं, राजाबाबू।' राजाबाबू आश्चर्यचकित कि अब क्या त्रुटि रह गई? सोचकर देखा और फिर उसने अपने आपको कहा मैं सभी जगह मांगने गया हूं परंतु सेठ लक्ष्मीचंद के यहां मांगने नहीं गया। इसलिए शत्रुता की पुरानी भावना अब भी मेरे हृदय में बसी हुई है। इस भावना को छोड़ देना होगा। दूसरे दिन प्रातः काल ही सेठ लक्ष्मीचंद के मकान पर पहुंचा। जाकर अलख जगाई- 'भगवान के नाम पर मिथा दो।'

सेठ लक्ष्मीचंद के नौकरों ने राजाबाबू को देखा तो दौड़े-दौड़े सेठ के पास गए। हाफते हुए बोले- 'सेठजी! राजाबाबू आपके यहां भीख मांगने आया है।' लक्ष्मीचंद आश्चर्य से बोला- 'यह कैसे हो सकता है? तुम्हें भ्रम हुआ है। कोई और होगा वह।' नौकरों ने कहा- नहीं सेठ जी! यह राजाबाबू ही है। यदि आप कहें तो खाने में विष मिलाकर दे दें। सर्वदा के लिए झगड़ा समाप्त हो जायेगा।' लक्ष्मीचंद दौड़कर आगे बढ़े चिल्लाकर बोले- 'राजा! राजाबाबू को अपनी छाती से लगा लिया उन्होंने, राजाबाबू ने

झुककर उनके चरणों को स्पर्श किया। लक्ष्मीचंद भी उनके पैरों में जा गिरे- बोले राजाबाबू ऊपर चलो मेरे साथ बैठकर खाना खाओ।'

राजाबाबू बोले- 'नहीं सेठजी! मैं तो मिथारी बनकर आया हूं। भीख मांगने आया हूं। भीख डाल दो मेरी झोली में।' उसी समय एक नौकर भागता हुआ आया बोला 'सेठजी! आपका तार। देखिए, इस तार में क्या लिखा है। लक्ष्मीचंद ने खोलकर पढ़ा। तार राजाबाबू के बेटे का था। कलकत्ता से आया था- 'हमारे पिता राजाबाबू का कहीं पता नहीं लगा। भूमि का झगड़ा अभी समाप्त नहीं हुआ, किंतु इस जमीन को लेकर हम क्या करेंगे? इस तार द्वारा हम भूमि पर से अपना अधिकार वापस लेते हैं। हमारे पिताजी नहीं हैं।

लक्ष्मीचंद सेते हुए बोले- 'नहीं, ऐसा नहीं होगा। उन्हें लिखो कि भूमि उनकी है। मुझे नहीं चाहिए। मैं पिता बनकर उनकी रक्षा करूंगा। आज से वे केवल राजाबाबू के नहीं, मेरे भी बेटे हुए।' तत्पश्चात् राजाबाबू मिथा लेकर मुझे तो देखा सामने गुरुजी खड़े हैं हाथ में गेरुचे वस्त्र लिये हुए। राजाबाबू को छाती से लगाकर बोले- अब तू संन्यासी बनने के योग्य हुआ राजाबाबू! अब ये कपड़े पहन। इस प्रकार जब तक मन के अंदर घृणा है, तब तक गायत्री के जाप का क्या लाभ? गायत्री की उपासना यदि करनी है, तो मन से घृणा को निकाल दो। ईर्ष्या और वैर की भावना को दूर निकाल दो तो फिर देखो, आनंद और सुख मिलता है कि नहीं?

समाचार दर्पण

- मूर्धन्य संन्यासी स्वामी दीक्षानंद सरस्वती 'स्मृति दिवस' अग्निहोत्री धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा तपोवन, देहरादून में मनाया गया।
- श्रीमती गायत्री मीना प्रधाना आर्य महिला समाज नोएडा का अभिनंदन किया गया।
- महात्मा हंसराज जयंती के अवसर पर जयपुर में 'समर्पण दिवस' के रूप में मनाया गया।
- अंडमान निकोबार के पोर्ट ब्लेयर में नए आर्यसमाज की स्थापना की गई। यह आर्यों के लिए गौरव की बात है।
- निःशुल्क योग साधना एवं स्वा ध्याय शिविर 29 मई से 4 जून गुरुकुल पौधा देहरादून में आयोजित किया जा रहा है। सम्पर्क सूत्र : 09350502175
- 5 जून 'पर्यावरण दिवस' के अवसर पर पर्यावरण शुद्धि यज्ञ का आयोजन कर धरती को स्वच्छ बनाएं।
- 10 से 18 जून केंद्रीय आर्य युवक परिषद के द्वारा 300 युवकों का राष्ट्रीय चरित्र निर्माण शिविर अमेटी शिक्षण संस्थान सेक्टर-44, नोएडा में डा. अशोक चौहान व डा. अमीता चौहान के सानिध्य में आयोजित किया जा रहा है।
- अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर आर्यसमाज में भव्य योग, आसन का आयोजन किया जायेगा।
- आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के वार्षिक साधारण अधिवेशन में पद्मश्री पूनम सूरी सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित हुए। तदर्थ बधाई।

‘विश्ववारा संस्कृति’ के नियम व सविनय निवेदन

1. यदि ‘विश्ववारा संस्कृति’ दिनांक 15 तक नहीं पहुंचती है तो आप प्रधान संपादक के नाम पत्र डालें। पत्र मिलते ही ‘विश्ववारा संस्कृति’ पुनः भेज दी जायेगी।
2. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा के नाम भेजें। वीपी रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जायेगा।
3. लेख संपादक ‘विश्ववारा संस्कृति’ के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त होने चाहिए तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुंदर लेख कागज के एक ओर लिखे होने चाहिए।
4. ‘विश्ववारा संस्कृति’ में विज्ञापन भी दिये जाते हैं, परंतु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जायेगा।
5. यह ‘विश्ववारा संस्कृति’ पत्रिका समाज-सुधार की दृष्टि से मानव कल्याणार्थ निकाली जाती है। इसमें आपको धर्म, यज्ञ कर्म, समाज सुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, योगासन, सदाचार, संस्कार, नैतिकता, वैदिक विचार, शिक्षा आदि एवं अन्य ऐसे विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।
6. ‘विश्ववारा संस्कृति’ के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक निःशुल्क ‘विश्ववारा संस्कृति’ भेजी जायेगी तथा पचास ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष निःशुल्क पत्रिका भेजी जायेगी तथा उसका फोटो सहित जीवन-परिचय ‘विश्ववारा संस्कृति’ में निकाला जायेगा।
7. अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपा हुआ लेख ‘विश्ववारा संस्कृति’ में नहीं छपा जायेगा।
8. अनाधिकृत रूप से लिए लेख, रचना, कविता के लिए प्रेषक ही उत्तरदायी होंगे।

आर्य कै. अशोक गुलाटी
प्रबंध संपादक

‘विश्ववारा संस्कृति’
आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, उप्र
संपर्क सूत्र : 0120-2505731,
9871798221, 9555779571
ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

अंग्रेजों को तीखा जवाब



इधर-उधर की कुछ औपचारिक बातों के उपरान्त लॉर्ड नार्थब्रुक ने विनम्रता से अपनी बात स्वामी जी के सामने रखी- ‘अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में आप जो ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, क्या उसमें आप अंग्रेजी सरकार के कल्याण की भी प्रार्थना कर सकेंगे?’ गर्वनर जनरल की बात सुनकर स्वामी जी सहज ही सब कुछ समझ गए। उन्हें अंग्रेजी सरकार की बुद्धि पर तरस भी आया, जो उन्हें ठीक तरह नहीं समझ सकी। उन्होंने निर्भीकता और दृढ़ता से गवर्नर जनरल को उत्तर दिया- मैं ऐसी किसी भी बात को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि राजनीतिक स्तर पर मेरे देशवासियों की निर्बाध प्रगति के लिए तथा संसार की सभ्य जातियों के समुदाय में आर्यावर्त (भारत) को सम्माननीय स्थान प्रदान करने के लिए यह अनिवार्य है कि मेरे देशवासियों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो। सर्वशक्तिशाली परमात्मा के समक्ष प्रतिदिन मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे देशवासी विदेशी सत्ता के जुए से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त हों। गवर्नर जनरल को स्वामी जी से इस प्रकार के तीखे उत्तर की आशा नहीं थी। मुलाकात तत्काल समाप्त कर दी गई और स्वामी जी वहां से लौट आए। इसके उपरान्त सरकार के गुप्तचर विभाग की स्वामी जी पर तथा उनकी संस्था आर्य-समाज पर गहरी दृष्टि रही। उनकी प्रत्येक गतिविधि और उनके द्वारा बोले गए प्रत्येक शब्द का रिकार्ड रखा जाने लगा। आम जनता पर उनके प्रभाव से सरकार को अहसास होने लगा कि यह बागी फकीर और आर्यसमाज किसी भी दिन सरकार के लिए खतरा बन सकते हैं। इसलिए स्वामी जी को समाप्त करने के लिए भी तरह-तरह के षड्यन्त्र रचे जाने लगे।

विश्ववारा संस्कृति

- सभी धार्मिक सामाजिक पत्रों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रकाशित होने वाली पत्रिका।
- वर्ष में 12 अंक प्राप्त करें।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का वार्षिक सदस्यता शुल्क 250 रुपया है। और आजीवन सदस्यता शुल्क 2500 रुपया है।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का विदेश में वार्षिक सदस्यता शुल्क 3100 रुपया है।
- लेखक अपने विचार, लेख, कविता आदि प्रकाशन सामग्री प्रत्येक मास की 2-4 तारीख तक भेज दिया करें।
- जिस मास से शुल्क भेजेंगे तभी से सदस्यता प्रारम्भ होगी।
- नमूना कॉपी के लिए रु. 20 का धन-आदेश द्वारा अग्रिम भेजें।
- प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपनी सदस्यता संख्या अवश्य लिखें और उत्तर चाहने वाले व्यक्ति दोहरा कार्ड या टिकट भेजें।
- प्रत्येक पत्र-व्यवहार में अपना पता भी हिन्दी में साफ-साफ लिखा करें।
- आपके सुझाव अपेक्षित हैं।

■ प्रबंध संपादक

‘विश्ववारा संस्कृति’ : सदस्यता आवेदन पत्र

नाम :

आयु : दिनांक :

पता :

शहर : राज्य : पिन कोड :

फोन : मोबाइल : ई-मेल :

नगद/चैक/मनी आर्डर/डीडी संख्या :

संरक्षक/आजीवन/पंच वर्षीय/वार्षिक सदस्यता हेतु संलग्न है।

चैक-मनी आर्डर 'आर्य समाज' नोएडा के नाम भिजवाएं अथवा आप लोग सीधे ही 'युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया' नोएडा, सेक्टर-33 में खाता संख्या : 1483010100182, IFSC-UTB10SCN560 में जमा कराकर रसीद की प्रतिलिपि निम्न पते पर भेजें-

प्रबंध संपादक

‘विश्ववारा संस्कृति’

आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, (उप्र)

संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 9871798221, 9555779591

ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com



ब्रह्मचारी कृष्ण से स्वामी दीक्षानन्द तक की जीवन यात्रा

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा ॥



एक सामान्य परिवार में आज से ११० वर्ष पूर्व जब एक नन्हें बालक ने पहली किलकारी मारी होगी तो किसी को यह अहसास तक नहीं होगा कि यह नन्हा बालक कल की चिन्तारी होगा, आर्यसमाज के भविष्य का रखवाला होगा। पूर्व जन्मों के सङ्कल्पित रूप में मानव-जीवन प्राप्त यह बालक सचमुच में एक मिशन का प्रतीक था और वो मिशन था वेदमाता एवं आर्यसमाज की सेवा। सङ्कल्पित व्यक्ति मझिल पा ही लेते हैं और वही हुआ। ब्रह्मचारी कृष्ण आर्यसमाज दीवानहॉल, देहली द्वारा आमन्त्रित गोष्ठियों, शास्त्रार्थों, सम्मेलनों में श्रोतारूप में भाग लेने लगा। अंकुर रूप में पड़ी सङ्कल्प-शक्ति जागृत हुई और बीस वर्षीय इस नवयुवक की अन्तर्निहित शक्ति को पहचाना शास्त्रार्थ महारथी स्वनामधन्य पं० रामचन्द्र देहलवी ने। उन्होंने भविष्यवाणी की—“यह युवक आर्यसमाज के लिये उपयोगी सिद्ध होगा और उसके मञ्च की शोभा बनेगा।” उनके इस सम्बोधन ने गुरुदत्त भवन लाहौर में संस्थापित श्रीमद् दयानन्द उपदेशक विद्यालय में प्रवेश का पात्र बनाया।

सर्वप्रथम सरदार मेहरसिंह, मन्त्री, आर्यसमाज वच्छावाली के निवेदन पर रविवासरीय सत्संग में सन्ध्या पर प्रथम प्रवचन दिया, जिसकी सराहना न केवल श्रोताओं ने की बल्कि इनके अरबी के गुरु पं० शिवदत्त जी मौलवी फ़ाजिल ने भी की।

शान्तिदूत क्रान्तिपथ पर—उपदेशक महाविद्यालय, लाहौर में यह २० वर्षीय युवक अध्ययनरत्न था कि अचानक सार्वदेशिक सभा की ओर से सूचना मिली कि हैदराबाद निजाम राज्य में अत्याचारों की सीमा पार हो गयी है और उससे वहाँ की हिन्दू-जनता त्राहि-त्राहि पुकार उठी है। वहाँ के मन्दिर, वहाँ के गुरुद्वारे, वहाँ के पूजा-स्थल वीरान हो रहे हैं। हिन्दू-मन्दिरों में शङ्ख-ध्वनि, घण्टा-नाद, कीर्तन आदि नहीं होने दिया जाता, हिन्दुओं के अखाड़े खुल नहीं पाते, आर्यसमाज मन्दिरों पर हर वक्त पहरा रहता है। आर्यसमाज के प्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी पर, हैदराबाद राज्य में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और इस प्रकार हैदराबाद एक इस्लामी रियासत बन गया है। इस अत्याचार के प्रति आर्यसमाज ने सार्वदेशिक सभा ने महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, हैदराबाद के भाई बंशीलाल के नेतृत्व में सत्याग्रह की घोषणा कर दी। अतः प्रबन्धन समिति ने इन्हें सत्याग्रह में जाने से मना कर दिया, क्योंकि ये पच्चीस वर्ष के नहीं थे। किन्तु ब्रह्मचारी कृष्ण ने कमर कस ली और सभी नियमों का उल्लङ्घन कर, साथियों से रेल-

यात्रा के पैसे एकत्रित कर, अपने भविष्य की परवाह न कर मातृभूमि की मुक्ति की कामना से ओतप्रोत सभी बाधाओं को पार करके कुछ साथियों सहित क्रमशः फिरोजपुर, छावनी, भटिण्डा, मानसा, वुडलाडा, जाखल, नरवाना, जीन्द के आर्यसमाज मन्दिरों में अपने क्रान्तिकारी भाषणों से उपस्थित लोगों के मनो में क्रान्ति का लावा धधकाता हुआ दिल्ली स्टेशन पर पहुँच गया और शोलापुरवाले सत्याग्रही जत्थे में शामिल हो गया, किन्तु शोलापुर इनके पिता का पत्र स्वामी स्वतन्त्रानन्द एवं भाई बंशीलाल के पास पहुँच चुका था और इन्हें सत्याग्रह की अनुमति नहीं थी। वहाँ पर भी अपने नेताओं की आज्ञा एवं शिष्टाचार का उल्लङ्घन करके इन्होंने कहा कि यदि आप मुझे अपने जत्थे में शामिल नहीं करेंगे, तो मैं हैदराबाद की सीमा में घुसकर निजाम के खिलाफ नारे लगाते हुए अकेला गिरफ्तारी दूँगा। बस यह सुनना था कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने आशीर्वाद का हाथ सिर पर रखकर कहा—“जहाँ तुम्हारे जैसे सत्याग्रही होंगे वह सत्याग्रह अवश्य सफल होगा और आदेश दिया तुम उस जगह जाओ जहाँ से अभी तक कोई गिरफ्तारी नहीं हुई है।” २६ मार्च १९३९ को रायचूर में ब्रह्मचारी कृष्ण ने निजाम के खिलाफ नारे लगाते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के मन्त्री श्री ज्ञानचन्द जी के नेतृत्व में गिरफ्तारी दी।

ब्रह्मचारी कृष्ण से आचार्य कृष्ण—उपदेशक महाविद्यालय लाहौर से स्नातक होने के बाद उनके मन में ऐसा ही एक विद्यालय स्थापित करने का विचार आया, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति की सहमति मिली। फिर क्या था, आठ विद्यार्थी लेकर पढ़ाना शुरू कर दिया और परीक्षण के रूप में पं० बुद्धदेव जी, आचार्य विश्वश्रवा जी एवं अमर स्वामी जी ने विद्यार्थियों की परीक्षा ली तो इतने प्रसन्न हुए और कहा कि तुमने दो वर्ष में चमत्कार ही कर दिया, अतः अब तुम गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ चले जाओ, वहाँ गुरुकुल चलाओ। ब्रह्मचारी कृष्ण ने आज्ञा का पालन किया और उनका आचार्य रूप स्थापित हुआ। इस गुरुकुल में भिक्षावृत्ति से लेकर हल चलाने एवं वेद पढ़ाने तक सभी कार्य १९५६ तक सुचारु रूप से करते हुए तथा गुरुकुल प्रभात आश्रम को आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से समृद्ध करने के पश्चात् एक दिन सहपाठी श्री मनोहरलाल जी, हैदराबाद के साथ “जङ्गल में मोर नाचा किसने देखा, समाज में आओ!” के आह्वान पर आचार्यत्व छोड़कर उपदेशक व प्रचारक के रूप में आर्यसमाज की सेवा शुरू कर दी।



आर्ष गुरुकुल नोएडा के ब्रह्मचारी आसन करते हुए।



महात्मा हंसराज जयंती के अवसर पर जयपुर (राज.) में अध्यात्म पथ के यशस्वी संपादक आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री जी को 'वैदिक विद्वान' के रूप में सम्मानित करते हुए आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डीएवी कॉलेज प्रबंधकत्री समिति के यशस्वी प्रधान डॉ. पूनम सूरी जी एवं मध्य में कर्मठ मंत्री श्री एस.के. शर्मा जी।

विश्ववारा संस्कृति

आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएडा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731